वीरबुन्देले भाग-२

विजय ही विजय

- प्रतापनारायण मिश्र

वीर बुन्देले

[भाग - २]

विजय ही विजय

○ प्रतापनारायण मिश्र

लोकहित प्रकाशन, लखनऊ

आत्म निवेदन

पाठकों के हाथों में बुंदेलखण्ड की ऐतिहासिक गाथाओं का दूसरा पुष्प 'विजय ही विजय' समर्पित करते हुए अतीव हर्ष हो रहा है। इस रचना की अधिकांश कहानियाँ महाराज छत्रसाल के जीवन से संबंधित हैं। उनके जीवनी का जब मैंने गहराई से अध्ययन किया तो अनुभव में आया कि वस्तुतः छत्रसाल का चरित्र विजय का इतिहास ही है।

उन्होंने जीवन में कभी पराजय का मुख देखा ही न था। स्वातंत्र्य संग्राम में और वैयक्तिक जीवन में भी। छत्रसाल अर्थात् विजय ही विजय यानी छत्रसाल। दोनों एक-दूसरे के पर्याय ही थे। इसीलिए प्रस्तुत पुस्तक को मैंने "विजय ही विजय" नाम दिया है। आशा है कि पाठक औरों की भांति इसको भी पसंद करेंगे।

मैं आभारी हूँ उन सभी लेखकों और मित्रों का जिनसे लेखन में सहायता मिली है। विशेष रूप से झांसी के श्री परशुराम गोस्वामी का जिनकी कृति हिन्दू कुल गौरव वीर छत्रसाल से मुझे बड़ा सहारा मिला है।

छत्रसाल ने अपने जीवन के अंतिम काल में समूचे हिन्दुस्तान को एक नई दिशा प्रदान की, जिसने आगे चलकर राष्ट्रजीवन में एक नये अध्याय को जोड़ा; बुंदेलों और मराठों की युति को। उसको आगे पढ़ें बुंदेलखंड की यशगाथाओं के तीसरे भाग में। प्रतीक्षा करें।

लेखक - प्रतापनारायण मिश्र
भारती भवन
५८, राजेन्द्रनगर पूर्व
लखनऊ

बसंत पंचमी
९ फरवरी, १९९२

अनुक्रम

युधिष्ठिर दृष्टि - गुण ग्राहकता

अक्टूबर का महीना था। सन् १६६४ का। छत्ता की आयु उस समय केवल १५ बरस की थी। तेजस्वी आभा से उसका मुखमंडल युक्त था। मुगलों की शक्ति के विषय में उसने सुन तो बहुत रखा था पर समीप से उसको कभी देखा न था। उनके सैनिक कितने हैं? प्रशिक्षण विधि क्या है? उनके अस्त्र-शस्त्र कैसे और कौन से हैं? इतनी बड़ी विशाल सेना का वे संचालन किस प्रकार से करते हैं? रणव्यूह की रचना कैसे की जाती होगी? इन सब बातों का उसको कुछ भी ज्ञान न था।

मजबूत से भी मजबूत रस्सी टूटती वहीं से है, जहाँ से उसकी कड़ी कमजोर होती है। विजश्री वरण के लिए मुसलमानों की दुर्बलता को भी जानना और समझना उतना ही आवश्यक था जितना कि उनकी अच्छाइयों को सीखना।

सहसा उसके मस्तिष्क में विचार आया, "क्यों न शत्रु की सेना में प्रवेश किया जाये?" उसमें घुस कर ही बहुत कुछ जाना और समझा जा सकता है।

... पर तुरंत ही उनकी अन्तरात्मा ने धिक्कारा, "छिः तू मुगलों की सेवा करेगा! वे तो तेरे माता पिता के हत्यारे हैं। विधर्मी और विदेशी हैं।"

उसके सद्विवेक ने उसको पुनः झकझोरा, "ठीक है.. पर कांटा तो कांटे से ही निकालना होता है। जहर को जहर से ही मारना पड़ता है। क्या हर्ज है? शत्रुओं के विनाश के लिए ही तो तू यह करना चाहता है। छत्रपति शिवाजी भी तो बीजापुर के मुसलमान शासक आदिलशाह की सेवा में कुछ समय तक रहे थे। उसकी सहायता से ही मुगलों से टक्कर ली थी। योग्य

समय आने पर यथासमय दोनों को ही ठिकाने भी तो लगा दिया था।"

उसको, पिता के एक - एक शब्द स्मरण हो आये, "बेटा! तुम शिवाजी से अवश्य मिलना! मैं तो न मिल सका। तू उनसे अवश्य सलाह ले! वे ही तुझको सही राह दिखायेंगे।" राजा चम्पतराय ने अपने पुत्र छत्ता से कहा था।

शीघ्र ही ध्यान में आई प्राणनाथ प्रभु की शिक्षा! गुरु ने उसको समझाया था कि, "छत्रसाल ! पहले शत्रु की ताकत को तौलो! उसके अनुरूप शक्ति का अर्जन करो! तब मुगलों को मात देने की तैयारी करो! यही नीति है। बिना तैयारी के जोश में जूझ मरना है दुर्नीति !"

तेरह वर्षों तक पांडवों को भी शक्ति जुटानी पड़ी थी। जब तक उन्होंने शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लायक शक्ति नहीं इकट्ठी कर ली, तब तक वे चुप रहे थे! असह्य अपमानों को भी सहा था। .....और फिर समय आने पर सूद दर सूद के साथ सभी अपमानों का भीषण प्रतिशोध लिया था! भगवान श्रीकृष्ण थे उनके प्रेरणा स्रोत, मार्गदर्शक!

छत्रसाल ने प्रतिज्ञा की थी कि, "हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू समाज का मैं संरक्षण करूँगा .. और अपनी प्रिय मातृभूमि को मुगलों के चंगुल से मुक्त कराऊँगा। यही मेरे इस जीवन का व्रत है।"

शपथ तो ले ली लेकिन उसको निभाना उतना सरल न था। विकट प्रश्न सामने आ खड़ा हुआ था कि उसको कैसे चरितार्थ किया जाये? एक ओर तो था मुगलों का विशाल साम्राज्य ! उनके सहस्रों अभेद्य दुर्ग! असंख्य प्रशिक्षित सेना! अत्याधुनिक किस्म के अस्त्रों-शस्त्रों के अगाध भाण्डार! ......और इसके पास न तो राज्य था और न ही कोई सेना । बस इने-गिने कुछ उत्साही युवकों की एक छोटी सी टोली मात्र थी। क्या नियमित सेना के बिना अकेला चना भाड़ फोड़ सकेगा? .....नहीं । यह वह अच्छी तरह से समझता था।

गुण न हिरानों - गुण ग्राहक हिरानों। योजनाओं की कमी नहीं होती। कमी होती है कुशल एवं चतुर योजकों की! चितेरों की ! छत्रसाल की सबसे बड़ी विशेषता थी, श्रेष्ठ गुणों को अपने अन्दर आत्मसात् कर लेने की ! उसको थी युधिष्ठिर की दृष्टि। सभी के अन्दर कुछ न कुछ गुण अवश्य होते

हैं। जहाँ से भी जो अच्छा मिले उसे ग्रहण करने में उसको संकोच नहीं था। गुणग्राही के साथ-साथ वे एक अच्छे योजक भी थे। शत्रु की सभी बातों को नाकारा समझ कर कूड़ेदान में फेंक देना, यह उनका स्वभाव न था।

शत्रु में भी कुछ अच्छे गुण होते हैं। .....नहीं तो ये मुट्ठी भर इतने बड़े देश को पराजित करने में समर्थ क्यों हो गये? हमारी दुर्बलता के कारण ही तो...। राष्ट्र हित सर्वोपरि है। उसको ग्रहण करने में कोई दोष नहीं। यदि ऐसा नहीं था तो राम ने मरणासन्न रावण के पास लक्ष्मण को राजनीति की शिक्षा लेने क्यों भेजा होता? अनुभवों से सीखकर अपनी कमियों को दूर करने में ही सफलता का रहस्य छिपा हुआ है।

उन्होंने दो कार्य करने का निश्चय कर लिया था। पहला तो मुगल फौज में घुस कर उनको निकट से देखने और समझने का।..... और दूसरा था शिवाजी से प्रत्यक्ष मिलने का। महाराष्ट्र और बुंदेलखंड की भौगोलिक स्थिति समान थी दोनों ही क्षेत्र पहाड़ों और जंगलों से ढके हुए थे। मैदान कंकरीले और पथरीले थे। दोनों में निर्धनता भी समान थी।

शिवाजी ने मुगलों से कैसे सामना किया होगा? कैसे यशस्वी हुए होंगे? उनके भी कार्य शैली को जानने और सीखने की उनकी इच्छा बलवती हो उठी। छत्रसाल को समाचार मिला कि राजा जयसिंह की सेना दक्षिण में युद्ध अभियान पर जा रही है। दिलेर खाँ, दाऊद खाँ कुरेशी, इतिशाम खाँ, शेखजादा कुवादखाँ मुल्ला याहिया, नवायत खाँ, जयसिंह सीसोदिया और सुजान सिंह बुंदेला आदि अनेक राजे - रजवाड़े उसके साथ थे।

आमेर के राजा मिर्जा जयसिंह बड़े ही पराक्रमी और चतुर राजनीतिज्ञ थे। लेकिन थे मुगलों के गुलाम ! मानसिक दास ! जिन कुछ व्यक्तियों के बाहुबल और बुद्धि पर औरंगजेब का साम्राज्य टिका हुआ था उनमें से एक थे मिर्जा राजा जयसिंह ! मुगल बादशाह पहले सिरे का धूर्त और कुटिल था। ऊपर से दिखावे के रूप में तो वह जयसिंह का बड़ा सम्मान करता, पर मन ही मन उनसे बड़ा भय खाता। यदि किसी समय जयसिंह की ही खड्ग उसके विरुद्ध उठ गई तो..... क्या होगा?

मुगल साम्राज्य को शिवाजी चुनौती देने लगे थे। महाराष्ट्र में उनकी अद्वितीय शक्ति उभर कर सामने आ गई थी। उन्होंने साम, दाम दण्ड, भेद

की नीति अपना कर अफजल खाँ और शायस्ता खाँ ऐसों तक को भी ठिकाने लगा दिया था। औरंग को सबसे बड़ी चिन्ता यह सता रही थी कि यदि ये दोनों शक्तियाँ मिल गईं तो .... फिर इस्लाम का अल्लाह ही मालिक.....। मुगल सत्ता का तो सत्यानाश ही हो जायेगा। शिवाजी इस हेतु प्रयत्नशील थे। उन्होंने राजपूतों और मराठों को मिलाने में कोई कसर न छोड़ी थी।

औरंगजेब का प्रयत्न था कि हिन्दू शक्तियाँ परस्पर टकरा जायें। वे स्वंय ही लड़ मरें। जयसिंह या शिवाजी में जो भी समाप्त होगा वह हिन्दू ही होगा। उसका दोनों में भला था। अतः शिवाजी को परास्त करने का दायित्व उसने जयसिंह को सौंपा था। उसकी कुटिल चाल को जयसिंह न समझ सका था। या समझ कर भी अनजान ही बना रहा। वह उससे वैर मोल लेने का साहस न जुटा पाया था। शिवाजी ने उसको पत्र भी लिखा था। उससे गुप्त रूप से वे मिले भी थे।

उसको बहुतेरा समझाया था किन्तु वह सचमुच में ही मन का गुलाम निकला। अपनी राजभक्ति का परिचय देने के लिये उसने शिवाजी के विरुद्ध लड़ने की योजना बनाई। अपनी सेना को दक्षिण की ओर प्रस्थान करने का आदेश दे दिया। छत्रसाल जिस अवसर की ताक में थे, वह उनको शीघ्र ही मिल गया था। वे जयसिंह से मिलने गये। साथ में उनके चाचा जामशाह और अंगदराय भी थे। मुगल सेना में भरती जोरों से चल रही थी।

छत्रसाल ने स्वयं की सेवायें उसको समर्पित करने की प्रार्थना की। चम्पतराय के पराक्रम से जयसिंह पहले से ही परिचित था। वह, उनसे लड़ा भी था। अतएव वीरपिता के पुत्र को अपनी सेना में प्रवेश देने में उसने कोई आपत्ति नहीं की। उसको सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी। एक पंथ दो काज। एक तो दक्षिण जाकर शिवाजी से मिलने का सुनहरा अवसर मिलेगा और दूसरा मुगल सेना को निकट से देखने का भी। जिसकी प्रतीक्षा में वे थे, वह घर बैठे ही मिल गया था।

जयसिंह ने युवक की पीठ थपथपाई और बोला, "छत्रसाल ! अगर इस युद्ध में तुमने वीरता दिखाई तो मैं बादशाह सलामत से तुम्हारी सिफारिश करके तुमको कोई बड़ा ओहदा दिलवा दूँगा।"

"मूर्ख कहीं का ! गुलाम ! यह मुझे निराबुद्ध और बच्चा ही समझता

है। इसको लगता है कि मानों मैं सचमुच ही मुगलों की ताबेदारी करने आया हूँ। अरे बेटा! समय तो आने दे ! तेरे ऐसे अनेकों को ठिकाने न लगाऊँ. . . तो. . ., अपने पास नौकर रखूँगा।'' छत्रसाल मन ही मन मुस्कराये। अपने मन के भावों को चेहरे पर प्रकट नहीं होने दिया।

माघ का महीना आया। ठंडक के दिन थे। जयसिंह की सेना ने नर्मदा को पार किया। दो माह तक लगातार चलते रहने के कारणं उसकी सेना थक गई थी। उसको कुछ विश्राम की आवश्यकता थी। उसने पुणें के निकट अपना डेरा जमाया था। निकटस्थ ग्रामों को लूटती-पाटती-जलाती मुगल सेना यहाँ तक आयी थी। उसने अभी तक अपनी मंशा को छिपा रखा था। अब शिवाजी पर आक्रमण करने की अपनी योजना को उसने प्रकट कर दिया।

वहाँ से कुछ दूरी पर पुरन्दर का प्रसिद्ध किला था। जयसिंह की सेना ने उसको जा घेरा। मुगलों और मराठों की अनेकों मुठभेड़ें हुई? शिवाजी भी तैयार थे। उनको अपने गुप्तचरों से उसकी नियत का अंदाजा लग गया था। कभी एक पक्ष हारता तो कभी दूसरा। जयसिंह को एक किले को ही लेने में लाले पड़ गये। यह युद्ध कई माह तक चलता रहा था। संख्याबल में मुगल अधिक थे और मराठे अति अल्प। फिर भी उन्होंने मुगलों के धुर्रे उड़ा दिये थे। जयसिंह के मन में आशंका उत्पन्न हो गई थी कि यदि मेरी भी अन्य सेनापतियों के समान पराजय हो गई तो ......मेरी धाक ही समाप्त हो जायेगी। प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी।

देश से अधिक अपनी स्वयं की प्रतिष्ठा उसे खाये जा रही थी। वह कुछ ढीला पड़ गया। हिन्दू शक्ति का क्षीण होना शिवाजी को ठीक नहीं लगा। दोनों ओर हिन्दू ही थे। अतः उन्होंने जयसिंह में पुनः हिन्दूपन के भाव को जगाने का प्रयत्न किया, पर वह आक्रमण से पूर्णतः विरक्त न हुआ। शिवाजी ने अपनी शक्ति को व्यर्थ में गंवाना उचित नहीं समझा था। उन्होंने स्वयं ही पुरन्दर का किला खाली कर दिया।

उस पर मुगलों का कब्जा हो गया। इस युद्ध को टालना ही शिवाजी ने श्रेयस्कर समझा था। उन्होंने जयसिंह से संधि कर ली। वह भी यही चाहता था। वह औरंगजेब के मन पर यह छाप डालना चाहता था कि देखो ! जो काम कोई नहीं कर सका, वह मैने कर दिखाया है। शिवाजी ने उसको

बीजापुर की मुस्लिम सल्तनत के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया था। शिवाजी की चाल थी कि पहले एक तो समाप्त हो। बाद में दूसरे से भी निपट लिया जायेगा। ये दोनों की मुस्लिम सत्तायें आपस में टकराती थीं। किन्तु हिन्दू शक्ति का उदय होना इनमें से किसी को भी फूटी आंखों भी नहीं सुहाता था।

शिवाजी ने बड़ी चतुराई से हिन्दुओं का टकराना बचा लिया था। अंत में मुगलों से तो भिड़ना ही था। व्यर्थ में अपनी शक्ति को क्षीण क्यों होने दें? छत्रसाल को पता चल गया था कि शिवाजी बीजापुर पर आक्रमण के अभियान में लगे हैं उनसे मिलने का उसने प्रयत्न भी किया था। लेकिन अन्य मोर्चों पर लगे रहने के कारण यह सम्भव न हो सका था।— और फिर छत्रसाल का तब तक व्यक्तित्व भी इतना ऊँचा नहीं हुआ था कि कोई उनको स्वयं भी बुलाता या मिलता। वे तो एक साधारण से सैनिक मात्र थे। शिवाजी, जयसिंह के साथ चार-पांच माह तक रहे थे। दोनों मिलकर बीजापुर से लड़े थे।

छत्रसाल को जयसिंह की सेना में रहते हुए डेढ़ बरस हो चुके थे। उनका मन अब वहाँ से पूरी तरह से उखड़ चुका था। बस शिवाजी से अभी तक भेंट नहीं हो पाई थी। एक बार सुयोग मिला भी, पर सहसा उनको दिल्ली दरबार से बुलावा आ गया था। वे उधर को प्रस्थान कर गये थे। वह, जिस तात्कालिक उद्देश्य से यहाँ आये थे उसमें से एक तो पूर्ण हो चुका था। शिवाजी से मिलना ही बाकी था। अतएव न चाहते हुए भी उनको मुगल सेना में कुछ समय तक और रहने को बाध्य होना पड़ा था।

एक दिन छत्रसाल को समाचार मिला। प्रसन्नता से उसकी बांछे खिल गई । औरंगजेब की आंखों में धूल झोंक कर, उसको चकमा देकर, उसके पहरे से निकल कर शिवाजी राजगढ़ सुरक्षित पहुँच गये हैं। सारे देश में, हिन्दू समाज में, खुशी की लहर व्याप्त हो गई थी, मुसलमानों में मुर्दनी। अब तो छत्रसाल को वहाँ एक-एक पल भी काटना भारी लगने लगा था। वे निकल भागने का प्रयत्न करने लगे। उस समय वे दिलेर खाँ के साथ एक मोर्चे पर लगे हुए थे। संयोग से वह स्थान महाराष्ट्र की सीमा के कुछ निकट था।

छत्रसाल वहाँ से निकल भागने का ताना-बाना बुनने लगे। समस्या यह थी कि शत्रु से आँख बचाकर वहाँ से निकलें कैसे? यदि मुगल सेनापति उनके

इरादे को भाँप जाता तो प्राणों पर ही बन आती। अंततः उनको एक मौका मिल ही गया। उन्होंने मुगल सिपहसालार से शिकार खेलने की अनुमति माँगी थी।

अनेक नुकता - चीनी के बाद उनको एक सप्ताह की छुट्टी मिल गई। छत्रसाल को तो जैसे मुँहमांगा वरदान ही मिला। यह समाचार आकर पत्नी को बताया। उसने भगवान को लाख-लाख धन्यवाद दिया।

[illegible]
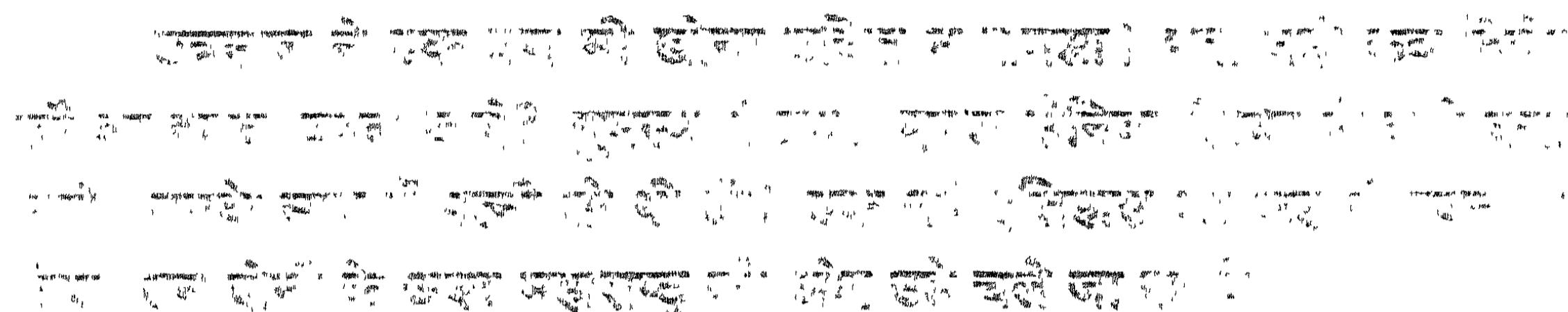
पारस को छूकर-लोहा सोना बन गया

ऊबड़-खाबड मार्ग पर दो अश्वारोही सरपट- सरपट चले जा रहे थे। उनमें से एक थी स्त्री। उसका भी पहनावा पुरुषों जैसा ही था। साड़ी को उसने फेंटा बाँध कर दुकच्छा के समान बाँध रखा था। शायद वह अपना स्त्रीवेश शत्रुओं से छिपाये रखना चाहती थी। उनके शीष पर साफा बँधा था। वे विशुद्ध किसान से दिखाई दे रहे थे। दोनों की आयु में बहुत बड़ा अन्तर न था। १७-१८ वर्ष के बे रहे होंगे। युवक की मूंछें बड़ी थीं। दोनों ही गौरवर्ण के थे।

दोनों के कटि में तलवार लटक रही थी। कंधों पर धनुष-बाण और ढाल भी थे। युद्ध विद्या में स्त्री भी दक्ष थी। रास्ता उनके लिए बिल्कुल अनजाना था। वे लोगों से मार्ग पूँछते-पौंछते आगे बढ़ रहे थे।

परिचय पूछने पर ठोक बजाकर युवक उत्तर दे देता, "दोनों पति पत्नी हैं! तीर्थाटन को निकले हैं! रामेश्वरम् जाना चाहते हैं।" जो जैसा मिलता उसको वैसा ही उत्तर देते।

अपना वास्तविक परिचय छिपा जाते। दिन भर चलते। जहाँ रात्रि हो जाती वहीं किसी ग्राम या मंदिर में रुक जाते। जो खाने को मिल जाता वह खा लेते। कभी-कभी तो लंघन भी हो जाता। इसी प्रकार से यात्रा करते-करते उनको कई दिन व्यतीत हो गये थे।

उनको एक उफनाती हुई नदी मिली। उसका नाम था भीमा। उसके सामने पहुँच कर वे सहसा थम गये। नदी का जल प्रवाह इतना तेज था कि उसको देख कर ही बड़ों - बड़ों के भी छक्के छूट जाते। किनारे पर खड़े होकर वे कुछ देर तक सोचते रहे कि क्या करें? प्रवाह के कम हो जाने पर

उसको पार करें या तुरन्त ही....। इस समय उसको पार करना संकट से खाली न था।

सचमुच में वे मुगल सेना के भगोड़े थे। उनके मन में यह आशंका बैठ गई थी कि कहीं मुगल उनका पीछा तो नहीं कर रहे हैं? उनको अपना भय न था। वह तो ऐसी अनेकों आपदाओं को झेल चुके थे। चिन्ता थी तो पत्नी की.. किन्तु देवकुँवरि भी साहसी महिला थी। वे शीघ्र ही किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाना चाहते थे। उनके रास्ते में भीमा आड़े हाथों आ रही थी। मुगल शिविर में शिकार का बहाना कब तक चलता? उनकी अवश्य ही खोज शुरू हो गई होगी। यह ध्यान में आते ही वे सिहर उठे! यदि पकड़ लिये गये तो .... उनकी आंखों के सामने मौत नाचती दीखी। दोनों ने तत्काल ही नदी को पार करने का निश्चय कर लिया।

उन्होंने राम का नाम लेकर साहसपूर्वक अपने घोड़ों को नदी में कुदा दिया। दोनों ही बहुत अच्छे तैराक थे। ऐसी नदियों को पार करने के उनके घोड़े भी अभ्यस्त थे। जल प्रवाह को काटते - चीरते हुए वे अन्ततः जैसे - तैसे नदी को पार कर ही गये। शिवाजी के राज्य की सीमा में वे पहुँच गये थे। अब उन्होंने राहत की साँस ली। शत्रुओं का यहाँ तक पहुँचना कठिन था। नदी के तट पर ही कुछ देर तक उन्होंने विश्राम किया। अपने भीगे हुए वस्त्रों को सुखाया। पोटली में जो कुछ बंधा था, उसको खाकर उन्होंने पेट की ज्वाला बुझाई।

अपने गन्तव्य की ओर आगे वे फिर चल पड़े। अभी कुछ दूर ही गये होंगे कि अंधेरा अपनी बाहें फैलाने लगा। एक गाँव दिखाई दिया। उसका नाम था उमरेड। उनको ग्राम के पटेल के यहाँ शरण मिल गई। उस दिन बड़ी निश्चिंतता से वे बेखटके रात में सोये थे। निरापद जो थे। कई दिनों तक निरन्तर चलते रहने के कारण वे बहुत थके हुए थे। शरीर चूर - चूर हो रहा था। अतः लेटते ही निद्रा देवी की गोद में समा गये।

युवक का अति प्रातः ही उठने का नित्य का अभ्यास था। दैनिक क्रियाओं से निवृत्त हो वह पास के एक मंदिर में देव दर्शन को जा पहुँचा। मंदिर यात्रियों का आश्रयस्थल भी था। शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास ने हनुमान के इस मन्दिर की स्थापना की थी। वह सामाजिक गतिविधियों का

केन्द्र बन गया था। उसके प्रांगण में एक अखाड़ा भी था। व्यायाम वे
मलखंब का स्तम्भ अलग से। रोजाना आस - पास के युवक वहाँ प्र
सायं एकत्रित होते। व्यायाम करते और कुश्ती लड़ते। मलखंब पर भ
भांति के अपने करतब दिखाते।

मंदिर में एक पुजारी भी था। उसका नाम था रंगनाथ शास्त्री
[illegible]वस्था को पार कर [illegible] था। उसमें अभी भी युवकों जैसी ही फुर्ती
[illegible] थी। [illegible]
[illegible] सुनने को लोग [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] कोई [illegible]

रंगनाथ, लोगों के मन में देशभक्ति का भाव जगाते। समाज पर
[illegible] अत्याचारों तथा देश की विषम परिस्थितियों से उनको अवगत कर
प्रतिकार के लिये लोगों के मन को उद्वेलित करते। अन्याय पाप है। उस
सहना तो महापाप। स्वस्थ बलिष्ठ युवकों के जमावड़े को देखकर आगन्
का मन प्रसन्नता से प्रमुदित हो उठा। वहाँ के देशभक्ति पोषक वातावरण
रम गया। उसके मन में उमंगों की लहरें हिलोरें लेने लगीं।

''काश! मेरे पास भी ऐसे ही युवकों की विशाल सेना होती....।
यवनों का मूलोच्छेदन ही कर देता....।'' उसके मुख से एक ठंडी अ
निकल गई।

स्वामी रंगनाथ के नजरों से वह छिपी न रह सकी। उनके प्र
ग्रामवासियों के मन में अगाध श्रद्धा थी। उनके एक संकेत पर अनेक युव
मर मिटने को सदा तैयार रहते। स्वामी जी के लिये नित्य लोगों के घरों
भोजन सामग्री आती। सबके दिन बंटे हुए थे। गृहत्यागी के लिये तो स
गृह अपने ही हैं। उस दिन नवागन्तुक ने सबके साथ बैठ कर अपना भोज
किया था। किसी ने भी उसकी न जात पूँछी न पात। ।

रंगनाथ ने युवक का परिचय प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया था
उससे अनेकों प्रश्न किये थे। .... किन्तु किसी को भी उसने अपना स

परिचय नहीं दिया। कौन है? कहाँ से आया है? इसको वह गुप्त ही रखना चाहता था। यद्यपि सब पर उसका विश्वास जम गया था। उसकी मनःस्थिति को देख कर स्वामी जी ने भी बहुत आग्रह करना ठीक नहीं समझा।

युवक की ओर देखकर वे मुस्कराये और बोले "अच्छा भाई! कोई बात नहीं। किसी अजनबी के सम्मुख यात्रा में बिना परखे जाने - पहचाने अपने को प्रकट नहीं करना चाहिये। यह अच्छा है और फिर तुम्हारे ऐसे व्यक्ति को तो ..... और भी नहीं... तुम्हारी कोई मजबूरी होगी।" यह कहते - कहते अकस्मात वे रूक गये थे। जैसे यह जान गये हों कि, यह कौन है? उनकी मुस्कराहट रहस्य से भरी थी।

स्वामी को पूरा विश्वास हो गया था कि यह मुगल सेना से भगोड़ा कोई सैनिक ही है। मुस्लिम सत्ता के विरूद्ध उसके अन्तःकरण में विद्रोह की तीव्र अग्नि धधक रही है। रंगनाथ को इसका आभास हुआ। नवागन्तुक अति अल्प समय में ही युवकों में ऐसा घुल मिल गया था कि जैसे वह उनका अभिन्न मित्र ही हो। उनसे उनका वर्षों का नाता रहा हो। कई युवकों ने तो उसको अपने घर चलने का भी निमंत्रण दे दिया था।

युवक ने मुस्कराकर उनको संतुष्ट किया, " मित्रों! फिर कभी! अभी तो क्षमा करें। यदि ईश्वर ने चाहा तो.....। आजकल तो देश में ऐसी स्थिति है, कौन कब मौत के घाट उतार दिया जाये? अभी तो मुझको यहाँ से शीघ्र ही प्रस्थान करना है। पटेल के घर पर मेरी पत्नी प्रतीक्षा कर रही होगी।" उसका चेहरा तमतमा गया था।

मुसलमानों के बर्बर अत्याचारों को उसने अपनी नंगी आंखों से देखा था। कदाचित् वे ही दृश्य उसके नेत्रों के सामने नाच गये थे। वह वहाँ से सीधे पटेल के घर पर आया। तब तक देवकुँवरि तैयार हो चुकी थी। ग्राम के पटेल के पूरे परिवार ने पति - पत्नी को बिदाई दी। एक रात में ही उनसे परिवार का अपनापा बन गया था। अभी वृक्ष से बंधे अपने घोड़ों को वह खोल ही रहा था कि सहसा कहीं से उसको करुण क्रन्दन आता सुनाई दिया। वह किसी स्त्री का था।

"अरे भाई ! कोई है? भाइयों दौड़ो .... दौड़ो ..... मेरा बच्चा कुएँ में गिर पड़ा है। उसको बचाओ....!"

अजनबी अपने को रोक न सका। अपनी पत्नी को वहीं पर छो
आवाज की ओर भागा। कुएँ पर पहुँचा। एक युवती बार-बार कुएँ में झ
हुई चिल्ला कर गुहार लगा रही थी। एक शिशु कुएँ में उतरा रहा था
अति घबराया हुआ था। दीवार में जड़े हुए कुंडे को उसने हाथ से कर
पकड़ रखा था। युवती कुएँ पर पानी भरने को आयी थी। उसकी पी
बंधा हुआ बच्चा पता नहीं कैसे सरक कर कुएँ में जा गिरा था? उसकी
ढीली पड़ गई थी अथवा उसके उछलकूद का यह परिणाम था, जो भी
कुछ कह नहीं सकते।

युवती की आर्तनाद को सुन, मंदिर पर एकत्रित युवकों के समुदा
से और भी कई युवक भाग कर वहाँ आ पहुँचे थे, उनमें से एक तो छ
लगाने को ही था कि नवागन्तुक ने उसको पकड़ लिया।

उसने युवक को रोकते हुए कहा! "भय्या राम सिंह! ऐसे नहीं।
प्रकार कूदने से तो बच्चे के प्राण पर संकट आ सकता है। यदि तुम उस
ही जा गिरे या स्वयं ही दीवार से टकरा गये तो....! देखो! कुआँ बड़
सकरा है। तुम्हारा साहस अवश्य ही सराहनीय है। मित्र! ऐसे तो सारा
ही बिगड़ जायेगा। मैं कुएँ में उतरता हूँ। मेरा अच्छा अभ्यास है। शीघ्र
कहीं से एक रस्सा लाओ।"

युवक दौड़ कर एक रस्सा ले आये। एक तो युवती के हाथों में ही
उसने दोनों को कसकर गाँठ लगाई थी। उसके सहारे से यात्री कुएँ में उ
गया। तब तक शिशु के हाथ से कुंडा छूट गया था। यत्किंचित भी
विलम्ब हो जाता तो बच्चा डूब ही गया होता। उसने गोता लगाया
तलहटी में जा पहुँचा। वह बच्चे को खोज कर ऊपर ले आया था। उ
इतनी फुर्ती और तेजी से गोता लगाया था कि लोगों ने आश्चर्य से दांतों
अंगुली दबायी। सभी के हृदय उसके प्रति श्रृद्धा से अभिभूत हो गये।

शिशु उसकी पीठ पर बंधा हुआ था। पूर्ण स्वस्थ था। किलकारियाँ
भर कर हँस रहा था। जैसे घोड़े की पीठ पर चढ़ी ही कस रहा हो। कि
भी बात को जल्दी ही पकड़ना और उसको तुरंत भूल जाना शिशु का जन्म
स्वभाव होता है। अभी कुछ क्षणों पूर्व ही उसके प्राणों पर आ बनी थी।
सब कुछ भूल गया था। जैसे उसको कुछ हुआ ही न हो। युवती ने झपट

बालक को अपनी छाती से चिपका लिया।

युवक का उससे न तो कोई रक्त का नाता था और न ही और भी कोई संबंध। कहाँ का वह और कहाँ के ये ग्रामवासी? सभी एक दूसरे से सर्वथा अपरिचित ही थे। ... फिर उसने अपने जीवन को संकट में क्यों डाला? उसके हृदय की संवेदनशीलता और पर दुख कातरता ही तो थी; जिसने उसको अपने जीवन को भी संकट में डालने की प्रेरणा और शक्ति प्रदान की थी। छबिनाथ की जय-जयकार से पूरा ग्राम गुंजित हो उठा। उसने इसी नाम से गांव में अपना परिचय कराया था। ग्रामवासियों ने उसको सिर आँखों पर बैठा लिया। उसके स्वागत सत्कार और पुरस्कार देने की योजना बनाई गई। वह इसको सुनकर बड़ा गम्भीर हो गया था।

"मित्रों! परोपकार और सेवा व्यापार नहीं है। सेवा प्रतिफल नहीं माँगता। प्रतिदान सेवा नहीं। वह विक्रय की वस्तु हो गई। भाइयों और बहनों! मुझे यहाँ अपनो ऐसा सबका स्नेह मिला। यही मेरा पुरस्कार है। मेरे लिये यही यथेष्ट है। मैंने कोई उपकार भी नहीं किया है। यह तो मेरा पावन कर्तव्य था।" प्रत्युत्तर में उसने कहा।

पति - पत्नी गाँव से जब प्रस्थान करने लगे तो ग्रामीणों ने उनको बिदाई देने को घेर लिया। युवती! जिसका बच्चा कुएँ में जा गिरा था, वह भी भागी - भागी आई। भाव विह्वल हो उठी। उसके नेत्रों में अश्रुधारा उमड़ पड़ी। युवक के चरणों से वह लिपट गई।

"भैय्या! तुम तो मेरे लिये भगवान ही बन कर आये थे। मेरे एक मात्र लाल को मौत के मुँह में जाने से बचा लिया। तुम्हारा यह ऋण मैं जनम भर भी न चुका सकूँगी। बड़ी गरीब हूँ! क्या भेंट दूँ, आपको?" यह कहते - कहते उसका गला रुँध गया था।

वह कुछ न बोल सकी। उसने देवकुँवरि के हाथों में एक पोटली थमा दी। कुछ क्षणों में स्वस्थ हुई।

वह पुनः बोली, "भाभी! यह मार्ग के लिये भोजन है। आज मेरे घर में कुछ भी न था। जो था वह लेकर आई हूँ। इसको स्वीकार करो। भैय्या फिर कभी दर्शन देना। अपनी इस बहन को भूल न जाना।" गले को साफ कर वह इतना ही बोल सकी थी।

उस दृश्य को देख कर किसी का भी हृदय द्रवित हो उठता। देवकुँवरि ने अपनी मुँहबोली ननद को अंक में समेट लिया। दोनों ननद - भाभी फफक कर रो पड़ीं। स्त्रियाँ तो करूणा की साक्षात प्रतिमूर्ति ही होती हैं। उन्होंने सभी के हृदयों को जीत लिया था। कई युवक तो उनको दूसरे गाँव तक पहुँचाने भी गये थे।

उन्होंने मार्ग में शिवाजी द्वारा प्रस्थापित सैन्य चौकियों को बड़ी गहराई से देखा था। उनकी चौकसी, बीहड़ों में पड़ी मराठी सेनाओं के सैनिक अभ्यासों और हलचलों पर भी उनकी सूक्ष्म दृष्टि गयी थी। दुर्गों की बनावट, उनकी दुरूहता भी उनकी पैनी निगाहों से बची न रह सकी थी।

शिवाजी ने इतने बड़े मुस्लिम साम्राज्य से कैसे टक्कर ली होगी? इसका अब उनको कुछ - कुछ आभास होने लगा था। स्थान स्थान पर उनसे पूछताछ होती। कुछ समय पश्चात ही उनको आगे बढ़ने की अनुमति मिल जाती। यह किसी के संकेत पर होता था या किसी स्वाभाविक प्रक्रिया का एक अंग था, इसका अंदाजा न लगा सके। उनको तो बाद में ही यह आभास हुआ कि उनकी प्रत्येक गतिविधियों की टोह ली जा रही थी।

वे चार - पाँच दिनों तक और चलते रहे थे, तब कहीं अपनी मंजिल तक पहुँचे। वह शिवाजी की राजधानी रायगढ़ पहुँच गये। मुख्यद्वार पर द्वारपाल से उन्होंने अपने आने का प्रयोजन बताया। छत्रसाल इतनी सुगमता से शिवाजी के पास पहुँच जायेगा उसकी उसे कदापि आशा न थी। आगरा पहुँच जाने पर भी तीन माह के पश्चात ही जयसिंह से उसको भेंट करने की अनुमति मिली थी। यहाँ पहुँच कर उसने अपने भाग्य को सराहा।

* * * * * * * * * *

छत्रसाल को आधा घंटा भी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी थी। कल प्रातः काल महाराज से उसकी भेंट होगी, यह उसको संदेशा मिल गया था। संदेशवाहक ने शिवाजी तक उसकी प्रार्थना पहुँचा दी थी।

"महाराज! एक सुन्दर युवक आपसे मिलने की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ा है। वह अपना नाम छबिनाथ बताता है। उसके साथ में एक स्त्री भी

है। आपके दर्शन की रट लगाये है। केवल आपसे ही मिलना चाहता है। उसके लिये क्या आदेश है?''

शिवाजी ने दूत को निर्देश दिया था कि, ''पहले उसको ले जाकर बड़े आदरपूर्वक अतिथिशाला में ठहराओ! देखो! उनके भोजन स्नानादि में जरा भी त्रुटि न हो। वे राजकीय अतिथि हैं। उनसे कहना कि आज की रात वे वहीं पर विश्राम करें। बहुत थके होंगे। कल प्रातः भेंट होगी। महाराज स्वतः ही बुलवा लेंगे।''

शिवाजी ने एक व्यक्ति को अलग से बुलवाया था। उससे कुछ पूछताछ की थी। संभवतया आगन्तुक के संबंध में ही कोई जानकारी उससे उन्होंने प्राप्त की थी। उसको कुछ समझाया था। पता नहीं, क्या?

दोनों आगन्तुकों ने अतिथिशाला में रात्रि बिताई। सब प्रकार की राजसी सुख - सुविधा देख वे आश्चर्य में पड़ गये। पत्नी तो पलंग पर जाते ही सो गई। शिवाजी कैसे होंगे? पता नहीं क्या - क्या प्रश्न पूछेंगे? मेरे साथ न जाने कैसा व्यवहार करेंगे? स्वयं ही अपने मन से सवाल करता और उत्तर भी दे देता। इसी उधेड़बुन में उसका मन-मस्तिष्क पड़ा था। यही सब सोचते- सोचते न जाने कब वह सो गया?

प्रातःकाल की पहली किरण फूटी। दैनिक क्रियाओं, जलपान आदि से निवृत्त हो वह बैठा ही था कि महाराज की ओर से बुलावा आ गया। उसको शिवाजी के सामने उपस्थित किया गया। महाराज एक साधारण छोटी सी चौकी पर विराजमान थे। उनका वह निजी कमरा था। सादगी का साम्राज्य था। कोई टीम - टाम नहीं।उनके बगल में ही तीन लोग और अलग - अलग आसनियों पर बैठे थे। उनमें से एक तो वही था, महाराज ने जिसके कान में कुछ बताया था।

शिवाजी जी उसकी ओर देखकर मुस्कराये और बोले, ''आओ! कुमार छत्रसाल! महाराष्ट्र की धरती पर तुम्हारा स्वागत है। कहो! मार्ग में कोई असुविधा तो नहीं हुई! बताइये! मेरे लिये क्या सेवा है?''

नवयुवक ने झुक कर महाराज को प्रणाम किया। शिवाजी की विनम्र वाणी में ऐसा सम्मोहन था कि आगन्तुक पर जैसे जादू ही कर डाला। एक क्षण को तो वह ठगा सा खड़ा का खड़ा ही रह गया। एक टक उनको

निहारता ही रहा। शिवाजी चौकी से उठे। उन्होंने उसको अपने स्नेह आलिंगन में आबद्ध कर लिया। छत्रसाल को लगा कि जैसे वह पिता की गोद में ही समा गया। उसको सबसे बड़ा अचम्भा तो इस बात का था कि शिवाजी को यह कैसे पता चल गया कि वह ही छत्रसाल है? उसने दरबान तक को भी अपना वास्तविक परिचय नहीं दिया था। उसकी तो जैसे वाणी ही लुप्त हो गयी थी।

अन्ततोगत्वा शिवाजी ने ही मौन तोड़ा। वे बोले, ''कुमार! तुम बड़े ही साहसी और वीर हो। अपने पिता ही जैसे। मैंने तुम्हारी बड़ी प्रशंसा सुनी है। देश को तुमसे बड़ी ही आशायें हैं। दिलेर खाँ की सेना से तुम कब और कैसे निकले? कहाँ - कहाँ गये? किसके - किसके यहाँ रुके? अपने प्राणों पर खेलकर विधवा के पुत्र को तुमने कैसे बचाया? हमारी चौकियों और हनुमान मंदिरों को तुमने जिस गहराई और रूचि से देखा - परखा। इन सब बातों की मुझे पूरी जानकारी है। और सुनो! दिलेर खाँ की फौज में तुम्हारी खोज हो रही है। तुमको पकड़ कर उसके सामने प्रस्तुत करने का आदेश दे दिया गया है। चारों ओर लोग दौड़ाये गये हैं। अच्छा है कि तुम यहाँ चले आये।''

महाराज, उसके मन की अवस्था को ताड़ गये थे। उन्होंने अपनी ओर से ही स्वयं उसके संशय का निवारण कर दिया था। छत्रसाल का अन्तःकरण शिवाजी के प्रति श्रद्धा से अभिभूत हो उठा। वह अपने को संयत न रख सका। लपक कर छत्रपति के चरणों को उसने चूम लिया। छत्रपति का स्नेह भरा हाथ उसके सिर पर चला गया। उसका जीवन सार्थक हो गया। भावातिरेक में उसके नेत्रों से अश्रु की धारा बह निकली। शिवाजी में उसने अपने पिता की छवि देखी थी।

बहिरजी के पास गुप्तचर विभाग की जिम्मेदारी थी। शिवाजी ने, छत्रसाल से उनका परिचय कराया। अपनी यात्रा में उसने कई जगहों पर बहिरजी को देखा था। विभिन्न वेशभूषा में। अब उसको ध्यान में आया कि कदाचित यही व्यक्ति उस पर निगाह रख रहा था।

थोड़े से स्मित हास्य से शिवाजी बोले, ''छत्रसाल! तुम चकित न होओ। राजा को सब ओर दृष्टि रखनी होती है। इसके बिना स्वच्छ प्रशासन और रक्षा करना सम्भव नहीं। तुम्हारे ऊपर भी बहिरजी नजर रख रहे थे।

अच्छा बताओ। यहां किस प्रयोजन से आये हो? मेरी क्या सेवा चाहते हो? निःसंकोच कहो! मेरी इच्छा तो तुम्हारे पिता चम्पतराय से मिलने की प्रबल थी। किन्तु मन की मन में ही रह गयी। उस श्रेष्ठ महापुरुष के मैं दर्शन न कर सका।'' उनके मुख से एक गहरी सांस निकल गयी थी।

चम्पतराय के असामयिक निधन के दुख की काली छाया उनके चेहरे पर साफ झलक पड़ी थी। छत्रसाल को शब्द मिल गये। यद्यपि उसका गला भर्राया हुआ था। उसको अपने स्वर्गीय पिता का स्मरण हो आया था।

वह बोला, ''महाराज! मैं स्वराज्य की सेवा में अपना जीवन समर्पित करना चाहता हूं। मुझे अपनी सेवा में ले लें। जीवन भर आपकी सेवा करता रहूंगा। मुगलों और देशद्रोहियों की दासता करने को जी नहीं चाहता। मन में बड़ी ग्लानि होती है। आपके पास बड़ी आस लेकर आया हूँ।

शिवाजी ने स्नेह सिक्त वाणी में उसको उत्तर दिया, ''वीर! मेरी भी प्रबल इच्छा है कि तुम स्वराज्य की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दो! अपने पिता की आकांक्षाओं को साकार रूप प्रदान करो। हम सब एक ही पथ के पथिक हैं। तुम यहां रहकर देश की सेवा कर सकते हो। मैं गौरव का अनुभव करूंगा। मुझको कोई आपत्ति नहीं है। यह राज्य तुम्हारा है।''

छत्रसाल के चेहरे पर आशा की झलक दीखी। उसको लगा कि महाराज ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है।

शिवाजी पुनः मुस्कराये और बोले, ''किन्तु पुत्र! यहां से भी अधिक आवश्यकता है तुम्हारी, बुंदेलखंड को! जिस कार्य को मैं यहां संपादित कर रहा हूँ, उसको तुम वहां पर भी क्रियान्वित करो! बुदेलखंड की धरती पर भगवा लहरा दो! तुमसे यही अपेक्षा है।''

कुछ क्षण रूक कर उन्होंने पुनः कहा कि ''काश! राजस्थान, दिल्ली और पंजाब में तथा अन्य सुदूर अंचलों में भी तुम्हारे ऐसे ही युवक और होते तो अब तक सारा हिन्दुस्थान स्वराज्य के झंडे के तले होता।''

उसको लगा कि जैसे उसके पिता श्री ही खड़े उसको निर्देश दे रहे हैं। उसने शिवाजी के फिर से चरण स्पर्श किये।

वह बोला, ''महाराज! मुझे आशीष दीजिए। आपके पद चिन्हों पर चल कर स्वराज्य के सपने को साकार कर सकूँ।''

अब वह शिवा जी से दिल खोलकर बात करने लगा था। वह, अपने हृदय की जिज्ञासा को न रोक सका।

शिवाजी से पूँछ ही तो बैठा, ''आपको मेरी सभी गतिविधियों की जानकारी मिलती रही थी। आपने जानकारी प्राप्त करने की व्यवस्था कैसी बनाई है? मुझे समझाएं। ईश्वरीय कार्य के संपादन में मुझे भी आपके अनुभवों का लाभ मिलेगा।''

शिवाजी बहिरजी की ओर देख कर खिलखिला कर हंस पड़े और बोले, ''बहिरजी! देखो, यह कैसा चतुर बन गया है? इसको छोड़ने की इच्छा तो नहीं होती पर सारा देश अपना है। बता दूं इसको तुम्हारी व्यवस्था के संबंध में।''

बहिरजी ने मुस्कराकर स्वीकृति में सिर हिलाया। अच्छा तो सुन! कुमार! हमने प्रत्येक आठ - दस ग्रामों के बीच में एक - एक गुप्त केन्द्र स्थापित किये हैं। चतुर और समर्पित व्यक्ति सभी स्थानों पर नियुक्त हैं। आस - पास के ग्राम के समाचार नित्य इस केन्द्र पर आते रहते हैं। फिर उसकी समीक्षा कर उसको आगे के केन्द्र पर पहुंचा दिया जाता है। इसी विधि से वह क्रमशः निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। ऐसे ही मेरी दृष्टि शत्रु और मित्र दोनों पर बराबर रहती है। मेरे लोग सर्वत्र फैले हैं। ग्राम का वह पटेल जिसके यहां तुम ठहरे थे, मेरी इसी व्यवस्था का एक अंग है।''

''मेरे गुप्तचर सदा विभिन्न व्यवसायों, वेशभूषा में सदा घूमते रहते हैं। यहां तक कि शत्रु की सेनाओं में भी हैं। विशेष समाचार मुझको सीधे मिलते हैं। इस कार्य में मेरे गुरुदेव स्वामी समर्थ रामदास से भी मुझको बड़ी सहायता मिलती है। हमारे राज्य में मठ मंदिर सामाजिक चेतना के केन्द्र हैं। मार्ग में तुमने जिस हनुमान मंदिर को देखा था, वह भी उनमें से ही एक है। तुमको भी इस प्रकार से स्वतंत्र व्यवस्था खड़ी करनी चाहिए।''

''पुत्र छत्रसाल! स्वराज्य केवल सोचने मात्र से नहीं आयेगा। शपथ लेना सरल है पर निभाना कठिन है। इस हेतु तुमको बड़े प्रयत्न करने होंगे। सहस्रों ध्येयवादी युवकों को तैयार करना होगा। जिनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य केवल स्वराज की स्थापना का ही होगा। तभी सफलता तुम्हारे चरण

चूम सकेगी। यही है इस युग की मांग।"

छत्रसाल को नई दिशा मिली और स्फूर्ति भी। पारस के स्पर्श से जैसे लोहा सोना बन जाता है, वैसे ही शिवाजी के संसर्ग से छत्रसाल भी सोना बन गया। उसका कर्तृत्व दमक उठा। शिवाजी का आशीष ले बुन्देलखण्ड के जन जीवन में स्वराज्य के सुप्रभात को लाने की प्रबल आकांक्षा ले, वह चल पड़ा बुन्देलखण्ड की धरती की ओर. . . . . ।

— * —

जनशक्ति की राजशक्ति पर विजय

सुहावना मौसम। महीना था जून का। खेतों में हल चल रहे थे। कहीं-कहीं पर बुवाई भी। किसानों को दम मारने की भी फुरसत नहीं थी। उनकी वर्ष भर की जीविका इसी पर तो निर्भर रहती है। बुंदेल खंड में इसी समय रबी की फसल बोई जाती है सहसा समाचार फैला कि पूरा समाज उद्वेलित हो उठा।

औरंगजेब परले सिरे का क्रूर, उन्मादी और धर्मान्ध था। मस्जिद के अतिरिक्त सभी पंथों के पवित्र श्रद्धास्थलों को भ्रष्ट और तोड़ने का उसने बीड़ा उठाया था। उसको इसमें विशेष मजा आता। हिन्दु समाज के मनोबल को पूरी तरह से तोड़ डालने की उसकी तीव्र अभिलाषा थी। उसकी संकीर्ण दृष्टि में हिन्दू धर्म तथा सभी मंदिर - गुरुद्वारे बेकार थे।

वह सदा बड़े दम्भ के साथ कहता भी रहता था कि "आज सारा हिन्दुस्थान मां बदौलत के जूतियों के तले है। मैं इस्लाम का नेक बंदा हूं। अगर इबादत करनी है तो सिर्फ एक की करो, वह है अल्लाह की। इमान लाओ तो बस कुरान पर ही। शेष सभी धर्म ग्रन्थों को जला दो। मदरसों के रहते हुए और पाठशालाओं की क्या जरूरत है?" वह इस प्रकार की असहिष्णु मानसिकता से बुरी तरह से ग्रस्त था।

उसने आदेश दिया था कि, "मंदिरों, देवालयों को तोड़ डालो! हिन्दुओं के सभी पवित्र स्थलों को भ्रष्ट कर दो! विशेष रूप से उनको तो अवश्य ही जिनसे हिन्दू समाज की गहरी आस्थाएँ जुड़ी हुई हैं।" काशी विश्वनाथ, राम जन्मभूमि, कृष्ण जन्म स्थान मंदिर उसके विध्वंस के जीते - जागते नमूने हैं।

ऐसे ही स्थानों में से ओरछा भी एक था। वह मंदिरों का ही नगर था।

वीरसिंह बुंदेला द्वारा निर्मित चतुर्भुज और रामराजा का मंदिर उसका विशेष लक्ष्य था। उसने अपने अतिविश्वस्त सेनापति को ग्वालियर से बुलवाया था ओरछा के मंदिरों को तोड़ने का काम उसको ही सौंपा गया था। मुगल सेनापति फिदाई खाँ द्रुतगति से ओरछा की ओर बढ़ चला था। हिन्दुओं को कोई त्राता नहीं दीखा। राजा चम्पतराय की रिक्तता अभी नहीं भर पाई। औरंगजेब ने सोचा था कि समूचे हिन्दुस्थान को इस्लाम में परिवर्तित करने का यही सुनहरा तो अवसर है. . . . । जो उसके पूर्वज छः सौ. वर्षों में भी करने में समर्थ नहीं हो सके थे। उसको वह कर दिखाना चाहता था।

गाँव-गाँव में विधर्मियों के आक्रमण की खबर आग के समान फैल गई थी। लोगों ने ओरछा और दतिया के नरेश सुजानसिंह बुंदेला और शुभकरण से फरियाद की। जनता की गुहार से भी उनकी नींद नहीं टूटी। ये दोनों नरेश मुगल बादशाह के आधीन थे। यद्यपि हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचारों को देख उनका हृदय व्यथित हो उठता, किन्तु उनमें प्रतिरोध का साहस न था। ग्रामवासियों को बाध्य होकर उनकी रक्षा हेतु हल के स्थान पर तलवार की मूँठ पकड़नी पड़ी।

हमारे आराध्यदेव! धर्मस्थान संकट में हैं! इसी एक भाव ने बच्चे-बच्चे के दिलों में उत्साह व नवरक्त का संचार कर दिया था। आबाल, वृद्ध नर-नारी उद्वेलित हो उठे थे। जन-जन के तन मन में जैसे आग ही लग गई थी। मुगलों के प्रति तीव्र आक्रोश व घृणा का वातावरण गरम हो उठा। यद्यपि हिन्दू बिखरे हुए थे तो भी मंदिर की रक्षार्थ जनता एकत्रित होने लगी। उस समय छत्रसाल महाराष्ट्र में थे। जनता की दृष्टि में वे पूरी तरह से चढ़े भी न थे।

मुसलमानों का भारत पर यह प्रथम आक्रमण तो था नहीं। गत सहस्रों वर्षों में देश पर अनेकों विदेशी हमले हुए थे। जबकि इन्हीं यूनानियों, शकों, हूणों, मुसलमानों और ईसाइयों के आक्रमणों में देश के देश उजड़ गये। वहां की संस्कृतियाँ नष्ट हो गई। आज तो उनके नाम इतिहास के पन्नों व खंडहरों में ही मिलते हैं। उन्हीं जंगलियों और बर्बरों का रेला भारत में भी आया। उनके निरन्तर आक्रमण होते रहे थे। फिर भी वे भारतीय संस्कृति को नष्ट नहीं कर सके। वह आज भी जीवित है। ज्यों की त्यों। क्यों?

ग्रामों व नगरों की तत्कालीन व्यवस्थाएं भी उसका प्रमुख कारण थी। वे

सामाजिक शक्ति का आधार स्तम्भ थीं। सामाजिक शैक्षणिक, आर्थिक व सुरक्षा आदि सभी दृष्टि से ग्राम व नगर इकाइयाँ स्वावलम्बी थीं। वे सरकारी कृपा पर जीवित न थीं। आत्मनिर्भर थीं। इसी में छिपी हुई थी भारत की संजीवनी शक्ति।

कृषि प्रधान देश का आधार था हल और बैल। हर गाँव में लुहार होते। वे हलों के फल-फावड़े, खुरपी, और अन्य विविध प्रकार के कृषि उपयोगी यंत्र वहीं पर बनाते। शस्त्र भी ग्रामों में ही तैयार होते। बढ़ई हल के ढाँचे और कुम्हार बर्तनों को! राज और शिल्पकार मकानों को! तथा बुनकर वस्त्रादि तैयार करते। ग्राम के कच्चे माल को वहीं पर पक्के माल में परिवर्तित करने की व्यवस्थाएं थीं! हर हाथ को काम मिलता। बेरोजगारी पर नियंत्रण आता।

दैनिक उपभोग की वस्तुओं को छोटे-मोटे व्यापारी उपलब्ध कराते। वैद्य चिकित्सा की और शिक्षक-शिक्षा की व्यवस्था सम्हालते। प्रत्येक गाँव में विद्यालय चलते। न्याय पञ्चायतें, पंच परमेश्वर, परस्पर की सहमति से गांव के झगड़ों को गांव में ही सुलझा लेते। यदि वे असमर्थ हो जाते तभी राजा उसमें हाथ डालता। नवयुवकों की एक सशस्त्र टोली भी होती। वे ग्राम की आन्तरिक सुरक्षा करते। ग्राम-ग्राम में सामाजिक चेतना को जगाने के लिये मंदिर होते। सभी में परस्पर पूरकता का भाव था।

पोखरे, तालाब, कुएँ, रहट और छोटी-छोटी नहरें हर खेत को जल से सिंचित करतीं। लोग स्वेच्छा से अपनी आय का दशमांश समाज सेवा में अर्पित करते। उससे ये सारी व्यवस्थायें चलती। भारत में अनेकों सत्ताएं आईं और गईं। स्वदेशी और विदेशी। किन्तु सामाजिक व्यवस्थायें नहीं टूटीं। वे चलती रहीं थीं। इसी में छिपी हुई थी राष्ट्र की प्राणशक्ति।

ग्रामों के प्रतिनिधियों की एक सभा जुटी। राजाओं के खड़े न होने पर ओरछा के मंदिरों की रक्षा का दायित्व जनता ने स्वयं अपने ऊपर ले लिया था। मूर्ति भंजकों से टक्कर लेने को वे स्वयं सन्नद्ध हो गये थे। मुसलमानों के आक्रमण का प्रतिरोध सबने मिलकर करने का निश्चय किया था। एक समस्या यह आकर खड़ी हो गई कि कौन पहल करें? जनता की अगुआई करें। लोगों में भावनायें तो थीं पर आवश्यकता थी उनको जोड़ने की। सही दिशा प्रदान करने की। उनमें से ही उन्होंने अपना एक नेता चुना। उसका

नाम था धर्मांगद। उसने नेतृत्व सम्हाला। उसके सहायक भी नियुक्त हुए थे। एक के बाद एक ने क्रमशः नेतृत्व का जिम्मा लिया। ये सभी कुशल रणबांकुरे योद्धा थे। किन्हीं कारणों से सैनिक वृत्ति छोड़ अपने कृषि के कार्य में लगे थे।

दस सहस्र युवकों की एक स्वावलम्बी सेना देखते ही देखते गठित हो गई। योजना बनी। मुगल सेना के आक्रमण की प्रतीक्षा न की जाये। बुंदेलखंड की परिधि में घुसने के पहले ही उनको कहीं दूर पर ही रोक दिया जाये। एक स्थान ऐसा चुना गया जो कि सामरिक दृष्टि से अति महत्व का था। बुंदेली जनता के पक्ष में। घूमघार की संकरी घाटी में जन सेना ने मोर्चा लगाया। झांसी से लगभग ३४ मील की दूरी पर यह स्थान था। बुंदेलों का अनुमान सही निकला, उधर से मुगल फौज भटकती-भटकती आ निकली।

यह संपूर्ण क्षेत्र पर्वतों और जंगलों से भरा हुआ था। पहाड़ों, कंदराओं, गुफाओं, वनों और झाड़-झंखाड़ों में छिपकर जन सेना बैठ गई। उसके पास तीर कमान, तलवार और बंदूकें भी थीं। ऊँचाई पर कुछ ने डेरा जमाया। बड़े-बड़े पत्थरों को भी जमा किया गया था। वे ऐसे थे कि जिनको ऊपर से आसानी से लुढ़काया जा सके। कोई भी योजना के विपरीत अति उत्साह में आकर काम न कर बैठें। इसकी भी पूरी सावधानी बरती गई थी। सबको अपने-अपने काम समझा दिये गये थे। सभी चुप्पी साधे बैठे थे।

फिदाई खाँ की फौज ने घाटी में प्रवेश किया। एक युवक मार्ग दर्शक के रूप में उनको यहाँ तक भटकाकर ले आया था। मुगल सेनापति ने इस स्थान को निरापद और सुरक्षित समझा था। छद्म वेशधारी युवक यह समझाने में समर्थ हो गया था। लगभग १० हजार की जनसेना उनको घेरे बैठी है इसका मुसलमानों को यत्किंचित् भी आभास न हो सका था। सभी कार्य बड़ी चतुराई और मुस्तैदी से किया गया था। घाटी में घुसने और बाहर निकलने के सभी मार्गों पर गुप्त रूप से ऐसी व्यवस्था बनाई गई थी कि एक भी मूर्तिभंजक उसमें से जिन्दा निकलकर न जा सके।

रात्रि का समय था।घना अंधकार। कोई भी हलचल नहीं। चारों ओर शांति और सन्नाटा छाया हुआ था। पक्षियों की चहचहाहट और फड़फड़ाहट भी बंद हो गई थी। अपने-अपने नीड़ों में वे विश्राम कर रहे थे। थकी हुई मुगल सेना भी प्रगाढ़ निद्रा में लीन थी। उन बेचारों को क्या पता था कि

सहस्रों नंगी तलवारें जीभ लपलपाती उनके कंठ को चूमने को म्यान से बाहर निकल रही हैं। धनुषबाण उनके सीनों को बींधने को तन रहे हैं। डेढ़ दो बजे का समय आया।

"हुक्का...हुआ...हु...क्का..हु..ऑं.....हुऑं" सहसा सियारों की चिल्लाहट सुनाई दी। किसी का ध्यान उस ओर नहीं गया। वे ठंड से चिल्ला रहे हैं। सबने यही समझा। जंगल में यह तो सामान्य सी बात थी। वास्तव में ये कृत्रिम आवाजें थीं। आक्रमण का संकेत था। सियार-गीदड़, खरगोश आदि तो पहले ही जंगल में, अंदर दूर तक भाग गये थे।

सारी घाटी दर्दनाक कराहों, चीत्कारों, हाय अल्ला.......से गूँज उठी। सोई पड़ी हुई मुगल फौज, पत्थरों से कुचल-कुचल कर मरने लगी थी। ऊपर से बड़े-बड़े पत्थर लुढ़क-लुढ़क कर उनको हलुआ बना रहे थे। जो किसी प्रकार से बचकर भागते भी, उनके वक्षस्थल तीरों से बिंध जाते। भाग्य के मारे जो द्वार पर पहुंच जाते उनके सिर, धड़ से उतार दिये जाते। वे भुट्टों के समान धरती पर लुढ़क पड़ते। बुंदेली जनता के इस प्रलयकारी हमले को वे न सह सके।

उन्होंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि जनता उन पर घात लगाये बैठी होगी। वे तो बड़े आराम से ओरछा पहुंचने का अपना मंसूबा बनाये बैठे थे। मूर्तियों पर किस प्रकार से हथौड़ा मारेंगे? उनको कहाँ-कहाँ से तोड़ेंगे? अपने लिये जन्नत का द्वार खोलेंगे। यही सोचते-सोचते वे सब सो गये थे। उनके लिये जन्नत का तो नहीं पर दोज़ख का द्वार अवश्य जनता ने खोल दिया था।

युवकों का शौर्य और पराक्रम तो देखने ही लायक था। हृदय में यदि आत्मविश्वास और साहस है तो क्या नहीं हो सकता? मुगलों की प्रशिक्षित सेना को उन्होंने अच्छी प्रकार से मजा चखा दिया था। मुहानों पर खड़ी मौत को देख कर शत्रु प्राण बचाकर पीछे अन्दर लौटता तो यहाँ बदूकों से निकली गोलियाँ उनके सीने से आर-पार हो जातीं। वे धराशायी हो जाते।

"या....दीन....या....अल्लाह.....कहाँ आ.....फंसे....इन.... हिन्दू शैतानों से बचाओ ...अब तो... बस तेरा ही सहारा है।"

ये आवाजें उनके मुख से निकलतीं कि वे सदा के लिये ठंडे हो जाते कुछ बेचारे तो यह बोल भी न सके। चूहेदानी में फंसे चूहे जैसी उनकी दुर्गति

बनी थी। पूरी घाटी ही उनकी कब्रगाह बन गई थी। सभी उसमें जिंदा दफन हो गये थे। अपनी करुण गाथा औरंगजेब को सुनाने को कदाचित ही कोई दिल्ली तक पहुंच सका हो।

मंदिरों की रक्षा के लिये इस युद्ध को किसी संगठित सेना ने नहीं लड़ा था। यह तो जनज्वार था। उसके सामने जो भी विधर्मी आया, वह मारा गया। जनता ने केवल अपने बलबूते पर अकेले ही मूर्ति भंजकों, मजहबी उन्मादियों की सेना को पूरी तरह से सफाया कर दिया था। गाँव-गाँव में घूम-घूम कर धर्म की रक्षा हेतु सन्नद्ध होने को प्राणनाथ प्रभु ने जो चेतना जगाई थी यह उसी का था, सुपरिणाम। जनता में कितनी सामर्थ्य छिपी है, यह युद्ध था उसका जीता-जागता नमूना! उस दिन जनसत्ता की राजसत्ता पर विजय हुई थी।

विविध प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों, आयुधों से सुसज्जित, प्रशिक्षित असंख्य मुगल सेना से बुंदेली जनता आखिर कब तक लड़ती? बुंदेलखंड की धरती का यह सौभाग्य ही था कि छत्रसाल ऐसे ठीक समय पर दक्षिण से वहाँ पहुंच गये। उनके ऐसा प्रचंड आत्मविश्वास से भरा, दूरदर्शी, सूझबूझ वाला कुशल नेतृत्व जनता को मिल गया। उन्होंने स्वराज्य अभियान का बिगुल बजा दिया। 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय' का ईश्वरीय एवं पुण्य कार्य उन्होंने सम्हाल लिया।

— * —

देवगढ़ की निशानी असहिष्णुता की कहानी

प्रातःकाल की अरुणिमा आकाश में छा रही थी। कई मित्रों के साथ बैठा मैं गपशप कर रहा था। कार्यकर्तागण मुझसे देवगढ़ चलने का आग्रह कर रहे थे। भाई साहब! वहाँ के मंदिरों को अवश्य देखना चाहिये। मेरे पास भी खाली समय था। चार-पाँच घंटे के पश्चात ही मुझे आगे के कार्यक्रम के लिये प्रस्थान करना था।

मेरा स्वास्थ्य कुछ ढीला था। नरम-गरम। हल्का सा ज्वर भी था। इसीलिये मैं टालम-टोल कर रहा था। उनको मेरी मनः स्थिति के संबंध क्या पता? मैंने अपने स्वास्थ्य के बारे में उनको कुछ बताया भी न था। मन असमंजसता में था। इसी तर्क वितर्क में उलझा हुआ था। ''जाऊँ न जाऊँ'' के फेर में। यह मेरे ललितपुर जिले के प्रवास के समय की बात है।

एक अखबार सामने आया। उसके एक शीर्षक पर सहसा मेरी नजर घूम गई। उसका आशय था कि औरंगजेब ने तो मंदिरों की रक्षा की थी। साम्प्रदायिकता की आग में जल रहे लोग व्यर्थ में उस पर उनको तुड़वाने का झूठा आरोप लगाते हैं। भ्रम फैलाते हैं। कार्यकर्ताओं ने इस लेख की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया था।

लेखक ने अपनी मनगढ़न्त कहानी गढ़ी थी। उसका तथ्यों से दूर-दूर तक का भी नाता न था। लेख देखकर मुझे हँसी आ गई। लेखक की बुद्धि पर तरस आया। इसके रचयिता के मस्तिष्क का दिवालियापन ही कहना उचित होगा। लेखक ने अपना वास्तविक नाम तक भी लेख में नहीं दिया

था। उपनाम भी ऐसा ही कुछ था। सम्भवतः उसी लेख के लिये ही गढ़ा हुआ लगता था। लेख दिल्ली से लिखा गया था। 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित हुआ था।

आज ऐसे लेखकों की कमी तो है नहीं; जिनकी लेखनी चन्द रुपयों पर ही बिक जाती है। नयन के इस अंधे को दिल्ली में चाँदनी चौक स्थित शीष गंज का गुरुद्वारा भी नहीं दीखा, जो आज भी खड़ा-खड़ा औरंगजेब की बर्बरता की कहानी कह रहा है। गुरू तेग बहादुर का बलिदान! उनकी नृशंस हत्या को दर्शाता है। सरहिन्द के दीवारों में चुनवाये गये गुरु गोविंद सिंह के दुधमुंहे बच्चों की वह निशानी भी उसको नहीं दीखती। भाई मतिंदास का सिर आरे से किसने चिरवाया था? वीर हकीकत का मस्तक धड़ से किसने अलग करवाया था? एक नहीं तो ऐसी अनेकों दास्ताने हैं। कहाँ तक बताऊँ? औरंगजेब की क्रूरता का नंगा-नाच। ये किस मानसिकता की परिचायक है?

दुर्भाग्य है कि हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये बलिदान करने वाले इन महापुरुषों की स्मृति में दिन-रात गीतों को गाने में जो नहीं अघाते, उनके पाकपरस्त तथाकथित ये अनुयायी विदेशी तत्वों के हाथों में खुलकर खेलते हैं। निरीह लोगों की हत्याएँ करने में अपने को गौरवान्वित अनुभव करते है। उनके निज का स्वार्थ, राष्ट्र हितों से भी ऊपर को उठ गया है। उक्त लेख इसी प्रकार की स्वार्थ प्रेरित मानसिकता का शिकार था।

मेरे मन ने कहा, ''ऐसे बेवकूफी से भरे लेख को पढ़ कर अपना समय क्यों नष्ट करूँ? क्यों न इस समय का सदुपयोग ऐसे साहित्य की सर्जना में लगाऊँ, जो सामान्य जनों के मन और मस्तिष्क को परिष्कृत कर सके।... कुछ क्षणों पश्चात ही फिर विचार आया... पढ़ ही क्यों न लूँ? देखूँ तो.... उसमें लिखा क्या है? क्या हानि है? मेरा मस्तिष्क इससे प्रभावित तो होगा नहीं।''

चाय की चुसकियाँ लेते-लेते मैं उस लेख को वहीं बैठे-बैठे आद्योपान्त पढ़ गया। मस्तिष्क ने झटका खाया। एक समय वह था जब क़लम के धनी, माँ सरस्वती के श्रेष्ठ पुत्रों ने बंदीगृह की यातनाओं को स्वीकार किया किन्तु अपनी कलम को विदेशियों के हाथों में नहीं बेंचा। आज एक ये भी हैं जिनकी

लेखनी काले धंधे का माध्यम बन गई है। वह कितनी पराधीन हो गई है?

उस लेख का मेरे मस्तिष्क पर कोई और असर तो नहीं हुआ पर इतना तो हो ही गया कि मेरा ढुलमुल मन देवगढ़ जाने को तैय्यार हो गया। अच्छा ही है.... चलो! अपनी आंखों से ही देख लूँ कि क्या सच है क्या झूँठ? देवगढ़ जाने को मेरी इच्छा बलवती हो उठी थी। मैंने कार्यकर्ताओं को वहाँ पर चलने को अपनी सहमति दे दी।

सभी प्रसन्न मुद्रा में दौड़े-दौड़े गये। आनन-फानन में कहीं से सवारियों का प्रबंध कर लाये। मुझे दोपहर तक अनिवार्य रुप से लौटना था। आगे के कार्यक्रमों के लिये! एक जीप और दो कारों में बैठकर मेरे साथ का काफिला ललितपुर से देवगढ़ की सड़क पर दौड़ पड़ा था। ऊँचे-नीचे पर्वतीय मार्ग पर हमारी गाड़ियाँ सर्राटे से चली जा रहीं थीं। जीप तो ऐसे स्थान के लिये थी जहाँ पर कार द्वारा जाना सुलभ न था।

ललितपुर से ३४ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है, देवगढ़! वेत्रवती (बेतवा) के तट पर! उसके परकोटों के अवशेष को देख कर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, कि कई मील लम्बे-चौड़े क्षेत्र में यह अवस्थित था। सहस्रों सुन्दर-सुन्दर मूर्तियाँ अभी भी इतर-तितर विखंडित अवस्था में वहाँ पर पड़ी हुई हैं। कितनी ही चोरी चली गईं?

नाहर घाटी में अनेकों मंदिरों की श्रृंखलाएं भी। सुरम्य वनों के नयनाभिराम दृश्यों को देखकर मेरा मन पुलकित और मुग्ध हो गया। प्रकृति के सौंदर्य की छटा को बिखेरता, पक्षियों की चहचहाअट। नीचे गहराइयों को छूती कलकल - छलछल झर - झर झरती वेत्रवती और उसकी धाराओं के मध्य में स्थित द्वीप में सघन वन। किसी के भी मन को मोह लेती। कुछ क्षणों के लिए तो उस दृश्यावली को देख मेरे मन में तरंग उठा। श्मशान वैराग्य उत्पन्न हुआ। क्यों न सब कुछ छोड़कर यहीं पर रह जाऊं।

पर्वतों को काट काट कर बनाई गयी गुफाओं में बड़ी - बड़ी चट्टानों पर उत्कीर्ण आदम कद प्रतिमाओं को देखकर मैं अचम्भे में डूब गया। मूर्तिकार ने तो सृष्टि के रचयिता को भी मात कर दिया था।

एक दिगम्बर जैन मुनि से भेंट हो गयी। विद्यानन्द जी गत ७ - ८ माह पहले ही वहां पर आये हैं। उनके आगमन में ईश्वर की प्रेरणा रही हो तो

कोई आश्चर्य नहीं। वज्र संकल्प, प्रबल इच्छा और कर्मशक्ति तथा लगन व्यक्ति से क्या नहीं करा सकती? बड़े - बड़े पत्थरों में गढ़ी हुई विशाल मूर्तियों के अंग - भंग किये गये सिरों पैरों हाथों और उंगलियों को जोड़ कर उसको इतने व्यवस्थित ढंग से जोड़ा और संजोया गया है कि देखते ही बनता है। ऐसा लगता ही नहीं कि प्रतिमाएं खंडित थीं। मनुष्य में असीम सामर्थ्य सुप्तावस्था में रहता है। उसका साक्षात्कार हो जाने पर वह प्रगट होती है। मुनि ने उसको चरितार्थ करके दिखाया है। ऐसे ही लोगों को प्रचंड जन सहयोग भी मिलता है।

सहस्रों वर्षों पहले हिन्दुस्थान की शिल्पकला कितनी अद्वितीय रही होगी? उसको विकसित करने वाली संस्कृति कितनी महान रही थी? आज प्रगतिशीलता का दम्भ भरने वाले तो उसके सामने बौने से दीखने लगेंगे। अज्ञात शिल्पकारों ने अपने छेनी - हथौड़े से अनगिनत अनगढ़े पाषाणों में भी जैसे ही प्राण फूंक दिये थे। उनके शरीर के एक - एक अवयव को उनकी नसों, रगों और मांस - पेशियों को ऐसा उभारा गया है कि उनको देखकर लगता है कि वे सजीव ही खड़ी हैं।

कला तो कला ही है। चाहे वह मंदिरों की हो या मस्जिदों की। वे सभी के लिए हैं। उसके बिना तो मानव जीवन ही नीरस बन जायेगा। इन सुन्दर कलाकृतियों का क्या दोष था? औरंगजेब ने उनको क्यों तुड़वाया? विध्वंस कराया। हिन्दू समाज की अस्मिता, आस्थाओं और स्वाभिमान पर चोट पहुंचाने के लिए ही तो . . . . ।

औरंगजेब ने ओरछा के मंदिरों को तोड़ने में असफल होने पर देवगढ़ और चन्देरी के जंगलों में छिपे इन हिन्दू समाज के धरोहरों को धूल धूसरित करवाया था। उसने इस प्रकार से अपनी खीझ मिटाई थी। मंदिरों की रक्षा और उनके विध्वंस की गाथाएं हिन्दुओं के शौर्य और लाचारी की कहानियां हैं।

जो भी संवेदनशील व्यक्ति वहां पहुंचता है, उसका हृदय व्यथा से भर उठता है। औरंगजेब के प्रति घोर घृणा, तिरस्कार और क्षोभ मन में उत्पन्न कराता है। मुसलमानों की बर्बरता, क्रूरता और उनकी असहिष्णु मानसिकता का परिचय लेकर ही वह वहां से वापस लौटता है। भगवान न करे हिन्दू की

भी वैसी ही मानसिकता बने. . . . यदि हो गई तो कदाचित एक भी मस्जिद देश में नहीं बची रह सकेगी।

देवगढ़ के भग्नावशेषों की निशानी और कुछ भी नहीं है सिवाय औरंगजेबी मानसिकता वाले इस्लामपंथी मुसलमानों की असहिष्णुता की ही कहानी है।

— * —

एक दीप से जले दूसरा

दीपावली की वह काली रात्रि थी। छत्रसाल की अर्द्धांगनी ने घर के सभी दीवारों, कमरों और आंगन को दीपमालिकाओं से खूब सजाया था। पूजा स्थल पर एक बड़ा दीप जल रहा था। देव कुंवरि ने थाली में जलते हुये दीपक को रखा और उस बड़े दीप से दूसरों को ज्योतित करने लगी। ग्राम के सभी घरों में ऐसा ही माहौल था। अमावास्या की अंधेरियां कुछ ही देर में प्रकाश से जगमगा उठीं। अनगिनत दीप जल उठे।

छत्रसाल एक पलंग पर बैठे - बैठे यह सारा दृश्य निहार रहे थे। यद्यपि सारी दृश्यावलि उनकी आंखों के सामने नाच रही थी। पर उनका मस्तिष्क और मन कहीं और पर था। देश की ज्वलंत समस्याओं के समाधान के मार्ग को ढूंढ निकालने में वह खोया हुआ था। सहसा मस्तिष्क में विचारों का एक झोंका आया। यदि एक चिंराग से दूसरे जलकर, असंख्य ज्योतित हो सकते हैं तो मेरे अन्तःकरण की ज्योति से सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड क्यों नहीं प्रकाशित हो सकता?

"अरे मूढ़! घर में बैठे - बैठे सोचने मात्र से तो यह हो नहीं जायेगा। तद्नुरूप कर्म करना होगा। निकल पड़ इसी समय। अपने हृदय की अग्नि से औरों को भी प्रज्ज्वलित कर दे। शिवाजी ने भी तो ऐसा ही किया था। आज के पावन दिवस पर तो लोग घरों में धन लक्ष्मी के आगमन का आह्वान करते हैं। रात - रात भर जागकर उसकी प्रतीक्षा करते हैं। फिर क्या तू बुन्देलखण्ड की रूठी हुई स्वातंत्र्य लक्ष्मी को नहीं रिझा सकता? अवश्य ही उसकी अस्मिता को वापस ला सकता है। बस यही शुभ घड़ी है। निकल पड़।"

उसके मस्तिष्क में पिता चम्पतराय, प्राणनाथ प्रभु और शिवाजी द्वारा दशाये गये मार्ग की सुखद स्मृतियां उभरकर सामने आईं। शिवाजी के एक एक शब्द स्मरण हो आये। "जनता को एक सूत्र में पिरोकर सबकी भावनाएं एक जैसी बनानी होंगी। उनके अन्तःकरणों में स्वतंत्रता की आकांक्षा का नन्दादीप जलाना होगा। ग्राम, नगर, गिरि, वन में गली - कूचों, खेतों खलिहानों में, चप्पे चप्पे में देशभक्ति व अनुशासन के भावों को जगाना होगा। ऐसों की प्रचण्ड सैन्य शक्ति खड़ी करनी होगी।"

"प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का सैनिक बने। समाज को इस रूप में उठाकर खड़ा करना होगा तभी लक्ष्य साकार होगा।" शिवाजी के स्वराज्य में जनता का सामाजिक आत्म अनुशासन उन्होंने स्वयं अपनी आंखों से देखा था। प्रत्यक्ष उसको झेला भी था। जयसिंह के नेतृत्व में जब मुगल सेना आगे बढ़ रही थी, शत्रु सैनिकों को महाराष्ट्र में राशन, पानी तक भी मिलना दुर्लभ हो गया था। लोगों ने काटने को तैयार खड़ी अपनी फसलों तक को भी जला दिया था। जिससे कि शत्रु के घोड़ों को घास भूसा आदि तक न मिल सके। कैसा अद्भुत था जनता का स्वयं प्रेरित अनुशासन? वह स्वेच्छा से राज्यादेश का पालन कर रही थी।

छत्रपति शिवाजी ने इसी प्रकार की जनता की मानसिकता बना दी थी। न कहीं काला बाजारी और न ही चोरी-चारी थी। जनता तिगुने-चौगुने मूल्य देने पर भी देश के शत्रुओं को उनकी आवश्यकताओं को उपलब्ध नहीं कराती। राष्ट्रानुशासन की ज्योति से सभी के अन्तः करण आलोकित थे। जो आदेश का पालन नहीं करते, जनता उनको स्वयं पकड़कर शासन के हवाले कर देती। बिना किसी पक्षपात के उनको कड़ा दण्ड मिलता। कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न हो? शिवाजी ने अपने गुरु दादेजी कोंडदेव से आत्म अनुशासन का पाठ सीखा था।

"चलो उठो भी! क्या सोच रहे हो? लक्ष्मी का पूजन नहीं करोगे? जब पूजा की साइत निकल जायेगी, तब.....!" देवकुँवरि की उलाहना भरी मधुर वाणी से उनका ध्यान टूटा।

जीवन में कभी-कभी ऐसे क्षण भी आते हैं कि उस पल पर एक शब्द भी व्यक्ति के जीवन को बदल डालता है।

'पूजा की बेला निकल जायेगी तब.....' पत्नी के शब्द ने उनके हृदय पर मर्मान्तक प्रहार किया।

"चल उठ.......यही सोचते-सोचते जब तेरी तरुणाई निकल जायेगी, तब क्या तू बुढ़ापे में उठेगा?" उसका मन झकझोर उठा।

वे उठे और पत्नी के साथ पूजा की आसनी पर जा बैठे। गणेश, गौरी और लक्ष्मी की वंदना की। देवी से अपने ध्येय को साकार करने का मन ही मन वरदान माँगा। सहसा उनके मानस पटल पर जयसिंह की सेना में कार्यरत हिन्दू राजाओं का चित्र उभरा। दतिया नरेश शुभकरण, सुजानसिंह आदि पर उनकी दृष्टि जा टिकी। वे सभी उनके साथ जयसिंह की सेना में लड़े थे। छत्रसाल से वे आयु में कहीं बड़े थे। शिवाजी के विरुद्ध वे लड़े जरूर थे पर उनके अन्तःकरणों में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने मन से मुगल सेना का साथ नहीं दिया था। औरंगजेब के पास उनके सम्बन्ध में इसी आशय की शिकायतें भी पहुँची थी। छत्रसाल की पैनी दृष्टि से यह सब छिपा न था।

ईश्वरीय कार्य में देरी कैसी? छत्रसाल उसी क्षण घर से निकल पड़े। वे दतिया जा पहुँचे। शुभ्करण से भेंट की। उन्होंने उसको अपना मन्तव्य बताया। मुसलमानों के हिन्दू विरोधी कार्यों से अवगत कराया। उसके अन्तःकरण में अन्यायों के प्रति क्षोभ उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। जब उसको अपनी सम्पूर्ण योजना को बताया तो वह हक्का-बक्का सा रह गया। छत्रसाल इतनी दूर तक भी जा सकते हैं! उसने यह कभी सोचा भी न था। सभी हिन्दू राजा मिलकर मुगल सत्ता से संघर्ष छेड़ दें, इस बात का उन्होंने उसको एहसास कराया था। उनके विचारों से वह सहमत तो हुआ लेकिन इतने बड़े साम्राज्य से दुश्मनी करना उचित नहीं समझा।

छत्रसाल उसके साथ कई दिनों तक रहे थे लेकिन उसको तैयार न कर सके थे। उसमें इच्छा शक्ति का नितान्त अभाव था। यह कार्य उसको असम्भव लगा था। छत्रसाल को निराशा छू न सकी। दुर्दम्य आकांक्षा और आत्मविश्वास था उसमें। वे अपने एक दूर के सम्बन्धी चचेरे भाई बलदाऊ के पास जा पहुँचे। उसके पास एक छोटी सी जागीर और सेना थी। दोनों भाइयों में खुलकर चर्चा हुई। यहाँ पर उनको सफलता मिल गई। वह उनका साथ

देने को तैयार हो गया था।

वे मुसलमान फौजदार बाकी खाँ से भी मिले। वह तोपों का एक अच्छा जानकार था। छत्रसाल के उस पर बड़े एहसान थे। उन्होंने घोर विपत्ति के क्षणों में उसके जीवन की रक्षा की थी। अपने जीवन रक्षक की बात वह टाल न सका। छत्रसाल के साथ वह भी कंधे से कंधा जुटाकर कार्य करने को तत्पर हो गया। उसके मार्ग में मजहब बाधा न बन सकी। वे अपने एक और सम्बन्धी रतनशाह से भी मिले। उसने छत्रसाल की योजना को अव्यावहारिक और बेवकूफी से भरा बताया। उनका साथ देने की बात तो अलग रही, उसने आग से न खेलने की चेतावनी तक दे डाली। उसने उनको बहुत ही हतोत्साहित किया था।

............किन्तु वह महान ध्येयवादी चुप बैठने वाला तो था नहीं। उसने स्वेच्छा से कण्टकाकीर्ण मार्ग को अपनाया था। प्राण ही तो जाते, उसको भय न था। ओरछा नरेश शुभकरण ने तटस्थ रहने का उनको विश्वास दिलाया था। यवनों से सदा लड़ते रहना छत्रसाल का उद्देश्य न था। हिन्दू विरोधी अत्याचारों से सम्पूर्ण बुंदेलखण्ड को दासता से मुक्त कराना और स्वराज्य की स्थापना था उनका मुख्य लक्ष्य।

धर्म और संस्कृति की रक्षा हो। यदि युद्ध में दिखाई दिया कि हमारे पराजय की निश्चित आशंका है तो ऐसी स्थिति में व्यर्थ में जूझना और वीरगति प्राप्त करना, यह निरी मूर्खता है। उनकी यह धारणा थी। कोरा बलिदान प्रेरणादायक और श्रद्धास्पद अवश्य है, पर आदर्श नहीं। इससे शक्ति क्षीण होती है। यदि वह नितान्त आवश्यक ही हो गया तो फिर उससे पीछे भी न हटना।

अपनी विवेकहीनता से यदि धर्मरक्षक ही मार दिये जायें तो धर्म की रक्षा कौन करेगा? 'धर्मो रक्षति रक्षितः' के वे जीते जागते प्रतीक थे। शत्रुओं से खुले मैदान में युद्ध करना तभी उचित है जब उसके अनुरूप शक्ति हो। सर्वप्रथम तो पूरी शक्ति को जुटाना आवश्यक है। तभी इष्ट की प्राप्ति सम्भव होगी। अब उनके पास स्वयं की एक छोटी-सी सेना भी हो गई थी।

'समरथ को नहिं दोष गुसाईं'। चाहे जैसे भी हो ध्येय साधना हेतु विजय प्राप्त करना यही था उनका अभीष्ट! शत्रुओं पर अकस्मात् छिपकर

धावा बोलना उनके बाजारों को लूटना, दुश्मनों को यमलोक पहुँचाना, उनके अस्त्रों-शस्त्रों के जखीरों और तोपों पर अधिकार करना, उनकी रणनीति का यह पहला कदम था।

एक दिन की बात है। छत्रसाल को दक्षिण से आये कई दिन हो गये थे। प्राणनाथ प्रभु से उनकी भेंट नहीं हुई थी। कहाँ पर हैं वे? उनको इसका पता भी न था। 'रमता जोगी बहता पानी'। उनका मन स्वामी से मिलने को व्याकुल हो उठा। बड़े अनमने से थे। मन को स्थिर करने के लिये वे अपने साथियों के साथ पन्ना की ओर भ्रमण को निकल गये थे।

कुछ दूरी पर उनको एक झोपड़ी दिखाई दी। मन में कुतूहलता जगी। उनको जहाँ भी कोई साधु-संन्यासी दिखता बरबस उधर को ही उनका मन दौड़ जाता। यह उनका सहज स्वभाव था। उनके पैर कुटी की ओर मुड़ गये। देखें तो .. इस सुनसान स्थान पर कौन है? उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। मन प्रसन्नता से नाच उठा। प्राणनाथ प्रभु ध्यानस्थ बैठे थे। वे कुछ दिनों पूर्व ही यहाँ पर आये थे। ऐसा लगता था कि मानो छत्रसाल से मिलने को ही वे यहाँ आसन जमाये बैठे हैं।

वह आगे बढ़ा। स्वामी जी के चरणों पर गिर पड़ा। मित्रों ने भी उनका अनुकरण किया। प्राणनाथ प्रभु की समाधि टूटी। गुरू शिष्य की आँखें मिली। उनका आशीष का हाथ उठा। सहसा प्रभु के नेत्र पुनः बंद हो गये। वे समाधिस्थ से हो गये थे। छत्रसाल चुपचाप उनके सामने हाथ जोड़कर बैठ गया। सन्त की समाधि तोड़े या नहीं। वह इसी सोच में उलझा हुआ था। कुछ क्षणों के पश्चात् स्वामी जी के नेत्र स्वतः ही खुल गये।

संन्यासी ने छत्रसाल से कहा, ''वीरवर! तुमने स्वराज्य की लड़ाई का उपक्रम प्रारम्भ कर दिया है, मुझको जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझको तुमसे यही आशा थी। मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि तुम अनेकों राजाओं और रजवाड़ों से मिले थे। इसमें तुमको आंशिक सफलता भी मिली है। चिन्ता न करो। सबके मन में विजय का विश्वास जगाओ। यथासमय सभी तुमसे आ मिलेंगे। यदि शीघ्र ही तुम छोटा - सा स्वतंत्र राज्य का अपना पौधा रोपने में समर्थ हो गये तो अधिकांश राजा तुम्हारे साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर शत्रुओं से लड़ेंगे। छत्रपति शिवाजी ने भी तो सर्वप्रथम एक छोटे से दुर्ग को जीत कर

ही स्वराज्य का श्री गणेश किया था।''

''महाराज इतनी बड़ी सेना का भार उठाने के लिए तो अथाह धन चाहिये। कहां से वह आयेगा?'' प्रत्युत्तर में छत्रसाल ने गुरू के समक्ष अपनी व्यथा और समस्या रख दी।

दो क्षणों के लिये स्वामी प्राणनाथ विचार मग्न हो गये।

यकायक वे पुनः बोल पड़े, ''तुम पन्ना को अपनी राजधानी बनाओ! कुछ समय के लिए ओरछा का मोह छोड़ो। मुगलों का पन्ना की ओर अधिक ध्यान भी नहीं है। वे उसको तो ऊसर ही समझते हैं। वहाँ के भूगर्भ में असंख्य हीरा, मोती, पन्ना और जवाहरात छिपा हुआ है। वह सम्पदा की खान है। तुमको धन की कमी कमी न रहेगी। उसका सदुपयोग करो! राष्ट्रहित में साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति का अवलम्बन करना पड़ता है।''

छत्रसाल अवाक् - सा गुरू के मुख को देखता ही रह गया। क्या ये भविष्यवक्ता हैं? पन्ना की धरती रत्नगर्भा है। प्राणनाथ प्रभु ने इस बात को कैसे जाना? वह अचम्भित था। वे भूगर्भ वेत्ता तो थे नहीं। निश्चय ही उन्होंने अपने मनः चक्षु से देखा होगा। इस सिद्ध महात्मा ने उनको इन शब्दों में पन्ना पर अधिकार करने का संकेत तो नहीं दिया है? अन्यथा वे यहाँ पर राजधानी बनाने को क्यों कहते?

त्रिकालदर्शी तो सांकेतिक भाषा में ही आशीष देते हैं। यह तो समझने वाले की पात्रता पर निर्भर करता है कि वह उसमें से सही अर्थ निकाल लें। उसका हृदय उत्साह से भर गया। उसके मन में छाई निराशा की धुंध छट गई।

छत्रसाल और प्राणनाथ प्रभु में एकान्त में कुछ और भी वार्ता हुई। सम्भवतः उस समय की राजनैतिक स्थिति पर चर्चा हुई थी।. . . . . और क्या - क्या बातें हुईं. . .? यह तो गुरू और शिष्य ही जानें। राजशक्ति के साथ - साथ जनशक्ति को खड़ी करने की व्यापक योजना पर भी दोनों का विचार विमर्श हुआ था। छत्रसाल ने ग्राम - ग्राम में घूम - घूम कर युवकों की विशाल सेना खड़ी करने का प्रयत्न शुरू कर दिया था।

अपने प्रवचनों - सत्संगों और प्रवासों में जन - जन में चेतना जगाने

का कार्य स्वामी जी ने अपने हाथों में ले लिया था। उनके शिष्यों का जाल चारों ओर फैला था। गुरू और शिष्य के कार्य क्षेत्र यद्यपि अलग - अलग थे पर मूल में दोनों का ध्येय एक ही था। एक का कार्य था खेत को तैयार करना और दूसरे का बीजारोपण का! जन और राजशक्ति का योग हुआ। उनके हृदयों की अग्नि से असंख्य दीप - दीपित हो उठे। एक दीप से जले दूसरा ऐसे अगणित होवें। गुरू और शिष्य ने मिलकर उसे चरितार्थ कर दिखाया। जिसकी चरम परिणति कालान्तर में स्वराज्य संस्थापना में हुई।

— * —

पहले देश - फिर परदेश

बुंदेलखण्ड में उत्साह और उमंग की तरंग व्याप्त हो गई थी। छत्रसाल का आगमन हो चुका था। जिन युवकों के हृदय मुगलों और स्वदेशी रजवाड़ों के अत्याचारों से दग्ध थे, जिनमें स्वतंत्रता की दीप शिखा जल रही थी, उनके समूह के समूह छत्रसाल के इर्द-गिर्द एकत्रित होने लगे थे। सभी ओर हलचल मची हुई थी।

दुनिया में क्या हो रहा है? कई तो उसकी ही चिन्ता में घुले जा रहे हैं। 'बेगाने की शादी में अब्दुल्ला दीवाना' वाली उनकी मानसिकता थी। उनके हृदय में उसकी पीड़ा तो बहुत झलकती, पर स्वदेश जल रहा था, उसकी रंचमात्र भी उनको चिन्ता न थी। कोई जब उसकी बात करता तो उत्तर देते क्या छोटी - छोटी बात करते हो? तुम तो बड़े संकुचित हो। सुख चैन की बंशी बजाते और मन में ख्याली पुलाव पकाते।

छत्रसाल ऐसों में न थे। उन्होंने अपने घर को ठीक करने की, उसकी दुर्बलता को हटाने की योजना बनाई। पहले देश। फिर परदेश। विदेशी शत्रु तो घातक होता ही है, लेकिन स्वदेशी उससे भी कहीं अधिक। बाहर का तो दूर से ही दीख जाता है पर घर का पास से भी नहीं। उस पर अपने पन का मुखौटा जो चढ़ा होता है। बहुत गहराई से देखने और समझने पर तब कहीं उस पर दृष्टि पहुंच पाती है।

बुन्देलखंड में ऐसे बहुत से राजे और भागीदार थे जो अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए देश को भी बेच देने में नहीं हिचकते थे। ऐसा सदैव ही होता आया है। देश भक्त और देशद्रोही। भूतकाल और वर्तमान में भी। अपने स्वाभिमान को बेचकर मुगलों का साथ देने में अपने को गौरवान्वित समझने

वालों की वहां कोई कमी न थी। ऐसे देशद्रोहियों को उन्होंने सबसे पहले सबक सिखाने का निश्चय किया था।

दूसरा प्रकार ऐसों का था जो भय के कारण दुश्मनों का साथ देते थे। तीसरा तटस्थों का था। अभी वे इन दोनों प्रकार के लोगों से उलझना नहीं चाहते थे। इनमें विजय का विश्वास जमाना नितान्त आवश्यक था। उनकी यह निश्चित धारणा थी कि जैसे - जैसे स्वराज्य का अभियान बल पकड़ता जायेगा, वे स्वतः ही साथ आते जायेंगे। यदि सभी मिलकर देश के शत्रुओं से लड़ें तो परकीयों को बड़ी सरलता से बाहर निकाला जा सकेगा। अतः उन्होंने अपने घर को सर्वप्रथम ठीक करने की ओर शक्ति केन्द्रित की।

बुंदेली राजपूतों में एक शाखा थी धंधेरों की। वे मुगलों के सहायक और उनके अंधभक्त थे। वीर चम्पतराय की मृत्यु के भी वही तो कारण बने थे। छत्रसाल का हृदय प्रतिशोध की ज्वाला से धधक रहा था। पितृशोक उनको कोंचे जा रहा था। स्वदेशी रजवाड़ों में सबसे पहले उनकी दृष्टि धंधेरों पर गई। उस समय कुंवरसेन वहां का राजा था। वह था बड़ा ही वीर! छत्रसाल ने उसको अपने बस में करने की योजना बनाई थी।

एक दिन किसी तीज-त्योहार का दिन था। उन्होंने अचानक धंधेरों पर हल्ला बोल दिया। धंधेरे तैयार न थे। आक्रमण उनके लिए अप्रत्याशित था। कुंवर सेन अपने सैनिक ले भागा। उसने किले में जाकर शरण ली। छत्रसाल ने उसको वहां तक भी नहीं छोड़ा। किले को घेर लिया। कई दिनों तक घेराबंदी पड़ी रही।

कुंवर सेन ने मुगलों से सहायता की याचना की थी। उनकी सहायता की वह बाट ही जोहता रहा। मुगलों ने उसकी कोई खोज खबर तक नहीं ली। वह जी रहा या मर रहा है। उसके साथ धोखा किया था। अपने को वह असहाय अनुभव करने लगा था। ऐसा भी मालिक किस काम का? . . . जो संकट के काल में भी काम न आये। उसका मन मुगलों के प्रति घृणा से भर गया। छत्रसाल ने उसकी इस मनःस्थिति को ताड़ लिया और भरपूर लाभ उठाया। अंत में बाध्य होकर उसने आत्मसमर्पण कर दिया।

छत्रसाल का बड़ा मन था। हृदय उदार और विशाल। यदि वे चाहते तो पितृ हत्यारे के पुत्र का शिरोच्छेद कर सकते थे....। किन्तु पिता के

कुकृत्य का प्रतिशोध पुत्र से लेना यह कहां का न्याय है? उनका मन इसको स्वीकार न कर सका। यह उनका उद्देश्य भी न था। वे तो हिन्दू शक्तियों को एकजुट करके विदेशी आक्रांताओं को देश की धरती से बाहर खदेड़ देना चाहते थे। यह था उनका मूल उद्देश्य। इस कार्य में जो भी सहायक बने वह उनका था। छत्रसाल ने कुंवर सेन को समझाया था। उसको कहलवाया था।

"वीर श्रेष्ठ! धर्म की रक्षा करना है हमारा लक्ष्य। व्यर्थ की मारा-मारी नहीं। इसीलिए हम सभी शत्रुओं से जूझ रहे हैं। तुमको प्रताड़ित करना मेरा उद्देश्य नहीं है देश के दुश्मन भी तुम्हारे शत्रु हैं। स्वाधीनता के इस युद्ध में तुम हमारा साथ दो।"

कुंवर सेन का हृदय परिवर्तित हो गया। वह छत्रसाल से बड़ा ही प्रभावित हुआ था। उसने, छत्रसाल को सब प्रकार से सहायता देने का वचन दिया। वे चाहते भी यही थे। यह उनकी थी पहली विजय। कुंवर सेन अब छत्रसाल का प्रतिनिधि था। उसने अपनी भतीजी का विवाह भी छत्रसाल के साथ कर दिया था। दोनों की मित्रता प्रगाढ़ रिश्ते में बदल गयी थी।

छत्रसाल ने लगे हाथों आस-पास के मुगलों के थानों और कार्यालयों पर भी आक्रमण कर दिया था। मऊ और सहानियां के नगरों तथा उनके निकटस्थ क्षेत्रों को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया था। कुंवर सेन इस कार्य में उनके लिए बड़ा सहायक सिद्ध हुआ था। अब उनके पास बैठने को स्वतः का स्थान हो गया था।

गोंडा का एक सरदार था। वे वनवासी थे। बड़े ही लड़ाकू और संघर्षशील। आवश्यकता थी उनको सही दिशा देने की। छत्रसाल ने उनके सरदार से गुप्त रुप से संपर्क साधा। उसमें स्वाधीनता के भावों को जगाया। उसके पास एक जागीर थी। वह भी मुगलों का सहायक था। वह गुप्त रूप से छत्रसाल का साथ देने को तैयार हो गया था। गोंड सरदार का साथी, आनन्द राय दुविधा में था। ये दोनों मुगलों की ओर से लड़ रहे थे। उनके शिविर में थे।

रात का समय था। छत्रसाल ने सिरौंज पर अचानक आक्रमण कर दिया। वह अति समृद्धशाली नगर था। यहां पर मुगलों की सेना रहती थी। मुहम्मद हाशिम और मुहम्मद खां यहां के फौजदार थे। बुंदेले मुगल शिविर में

घुस आये थे। युद्ध जब अपने निर्णायक दौर में था तभी वह गोंड सरदार मुगल खेमे से निकल कर बुन्देलों से आ मिला। आनन्द राय ने भी उसका साथ दिया। इन दोनों हिन्दू सरदारों ने उल्टा अपनी ही शाही सेना पर भीषण प्रहार करना शुरू कर दिया था। मुगल सेना भयभीत हो उठी। वे हक्के-बक्के रह गये थे। मुसलमान सैनिक मार गिराये गये।

"धोखा . . . धोखा. . . इन हिन्दुओं का कोई भरोसा नहीं।" '

यह कहती चिल्लाती शाही सेना भाग निकली थी।

फौजदार मुहम्मद खां और हाशिम को भी मैदान छोड़ कर भाग जाना पड़ा। अब सिरौंज पूरी तरह से छत्रसाल के हाथों में आ गया था। मालवा के आस पास के और भी कई थानों पर भी बुंदेलों का अधिकार हो गया था। गोंड सरदार और आनन्द राय, अब छत्रसाल के सेनानायक बन गये थे। यहां से उनको अपार धन और अस्त्रों शस्त्रों का बहुत बड़ा भण्डार भी मिला था। छत्रसाल ने अपनी ओर से गोंड सरदार का टीका किया। उसको सम्मानित किया और स्वराज्य के अन्तर्गत उसको जागीरदार नियुक्त किया। आनन्द राय अब सिरौंज का किलेदार था। दोनों ने गुलामी का पट्टा अपने गले से उतार फेंका था।

एक छोटी सी रियासत और थी, बांसी की! वहां का जागीरदार था। केशवराज डांगी। वह भी मुगलों का सेवक था। छत्रसाल ने उसको भी बहुत समझाया था कि वह मुगलों का साथ छोड़ दे। वह नहीं माना। सब एक समान तो नहीं होते। हाशिम खां और मुहम्मद के पराजय से वह बहुत क्षुब्ध हो गया था। उसको लगता था कि मानों यह उसकी ही पराजय है। मुगलों को अपना स्वामी समझता था। स्वामिभक्ति की कुरूढ़ि से ग्रस्त था उसका मन।

उसने छत्रसाल की सेना मर आक्रमण कर दिया। देशभक्त और अंध राजभक्त सेनाएं परस्पर भिड़ गयीं। दोनों ओर ही हिन्दू थे। इसको कैसे टाला जाये? छत्रसाल ने कई प्रयत्न किये थे। दोनों के परस्पर लड़ने से हिन्दू बल ही क्षीण होता। केशवराज के पुत्र ने भी अपने पिता को बहुत समझाया था। पर कोई परिणाम न निकला।

अंत में कोई अन्य मार्ग न निकलने पर छत्रसाल ने उससे स्वयं प्रार्थना

की, "मित्र केशव। तुम्हारी शत्रुता तो मुझसे है। यद्यपि होनी नहीं चाहिए। हम दोनों ही हिन्दू हैं। तुम लड़ रहे हो मुसलमानों व इस्लाम के पुरस्कर्ताओं की खातिर और मैं हिन्दुत्व के लिए। व्यर्थ में लोगों का खून क्यों बहे। हम दोनों अकेले ही युद्ध क्यों नहीं कर लेते? जो भी विजयी हो, पराजित उसकी आधीनता स्वीकार कर ले।" प्रयुत्तर में उसने कहा "हां, यह बात ठीक है।"

उसको छत्रसाल की बात जंच गई थी। वह कुछ सनकी भी था। सनक की झोंक में वह यह कह गया था। राजपूत जो ठहरा! अपने वचन से कैसे फिरे? पर उनके इस निर्णय को सुन छत्रसाल की सेना तो भौंचक्की सी रह गयी। केशवराज दांगी द्वन्द्व युद्ध में बड़ा निपुण था। अपने समय का बेजोड़। उससे लड़ने में छत्रसाल के जीवन पर आंच आ सकती थी। छत्रसाल के सैनिकों को उनका यह निर्णय उपयुक्त न लगा। उन्होंने अपने नेता को बहुत रोकने का प्रयत्न किया। किन्तु वे नहीं माने। उन्होंने बहुत बड़ा खतरा मोल ले लिया था। एकल युद्ध को देखने के लिए दोनों पक्षों के सहस्रों सैनिक एकत्रित हो गये थे।

वे दोनों द्वन्द्व करते - करते थककर चूर - चूर हो गये थे फिर भी कोई भी पराजय को स्वीकार करने को तैयार न था। केशवराज के पुत्र ने पिता के पैर पकड़ लिये। बहुत विनती की पर वह हठी नहीं ही माना। आत्मरक्षा हेतु छत्रसाल भी बाध्य थे। उस पर तो जैसे खून ही सवार हो गया था। सभी प्रकार के अस्त्रों - शस्त्रों की प्रतिस्पर्धा के पश्चात धनुष बाण की बारी आई। उसको लेकर दोनों मैदान में आ डटे। संयोग से छत्रसाल के धनुष से एक तीर ऐसा छूटा कि वह दांगी के वक्षस्थल को चीरता हुआ निकल गया। वह धराशायी हो गया। छत्रसाल को इस वीर की मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ था।

किन्तु वे करते भी क्या? कर्तव्य कर्म कठोर होता है। उन्होंने उसके बड़े पुत्र विक्रमाजीत को जागीर वापस कर दी। कालान्तर में वही छत्रसाल का एक प्रमुख सेनानी बना। स्वाधीनता के युद्ध का योद्धा। इन विजयों से उनकी सर्वत्र धाक जम गयी थी। उनकी तूती बोलने लगी। बुंदेलों का खोया हुआ आत्मविश्वास पुनः लौटने लगा। अपनी हड़पी हुई स्वतंत्रता को वे पुनः प्राप्त कर सकते हैं।यदि साधनहीन छत्रसाल ऐसा कर सकते हैं तो वे क्यों नहीं? इस भाव का जन - जन में प्रादुर्भाव हुआ।

सभी एक जुट हो गये। समूचा बुन्देलखण्ड छत्रसाल के नेतृत्व में विदेशी शक्तियों से लोहा लेने को खड़ा हो गया था। जनता को आवश्यकता थी प्रचंड आत्म विश्वास से युक्त नेतृत्व की और स्वराज्य के साधक को जरूरत थी संगठित अनुशासित, जागृत समाज की। दोनों को मनचाही वस्तुएं मिलीं। बुंदेलखण्ड के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ गया।

युक्ति व प्रयत्न से असम्भव भी सम्भव

घना जंगल था। मजदूर अपने - अपने सिरों पर बड़े - बड़े गट्ठरों को लादे हुए चले जा रहे थे। उनके साथ में खच्चर भी थे। उन पर कुछ खाद्य सामग्री तथा अन्य वस्तुएं भी लदी हुई थीं। उनके अगल - बगल में सुरक्षा सैनिकों की एक विशेष टोली भी थी। सबसे आगे घोड़े पर एक सवार था। उसके पहनावे और वेशभूषा को देख कर कोई सहज ही अनुमान लगा सकता था कि वह अवश्य ही मुगल सेना का कोई बड़ा अधिकारी ही होगा। वह भी अस्त्रों - शस्त्रों से सज्जित था।

बोरों में कुछ अति गोपनीय खतरनाक वस्तुएं भी रही होंगी। . . .नहीं तो उनकी इतनी सुरक्षा क्यों की जाती? मजदूर श्याम वर्ण के थे। उनमें से कुछ तो इतने काले थे कि उनको देखकर कोयला भी शर्मा जाता। वे सभी गोंड नामक जन जाति के थे। यह टुकड़ी घने वन के बीच में ५-६ घंटों तक बराबर चलते रहने के पश्चात यहां तक आ पायी थी।

उनको एक लम्बा - चौड़ा सा चौरस मैदान दिखायी दिया। जंगल को साफ करके इसको बनाया गया था। वहां पर अनेकों प्रकार के तम्बुओं, डेरों और शामियानों का पड़ाव पड़ा था। मुगलों का वह तोपखाना था। तमाम तोपें पक्तियों में खड़ी थीं। उससे कुछ ही दूरी पर बारूदों और विविध प्रकार के अन्य आयुधों का विपुल भाण्डार भी था। सैनिकों की यह छावनी थी। आगन्तुक टुकड़ी का यही गन्तव्य स्थान था।

यहां की सुरक्षा का बड़ा कड़ा प्रबन्ध किया गया था। यहां तक शत्रु का पहुंच पाना सरल न था। एक तो मार्ग दुर्गम... और... फिर उसकी रक्षा व देखभाल के लिए सहस्रों सशस्त्र सिपाही नियुक्त थे। अनेकों सुरक्षा चौकियों

को पार करके यहां तक आना पड़ता था। यहां के सैनिक बाहरी दुनियाँ की सभी हलचलों से कोसों दूर थे। यहां पर उनको एकाकी जीवन ही बिताना पड़ता था। ऐसे भयानक पशुओं से भरे जंगल में ऐशोआराम कहाँ?

आगन्तुक ने आगे बढ़कर सुरक्षा में लगे कोतवाल के हाथों में दिल्ली दरबार का शाही फरमान थमा दिया। हुक्मनामें का आशय यह था कि, "ये सिपहसालार साहब दिल्ली दरबार के खास मेहमान हैं। खुफिया विभाग के तोपखाने के सिपहसालार! इनको सब प्रकार का ऐशो आराम मुहैय्या कराया जाये किसी प्रकार की गफलत न हो। बादशाह सलामत के हुक्म के मुताबिक ये धामौनी में खुफिया तौर पर जा रहे हैं। कुछ खास किस्म के गोला - बारूदों की खेपें भी इनके साथ में हैं। उनको महफूज जगह पर रखवायी जायें। इनके हर हुक्म की तामील हो।"

कोतवाल जफर खां ने फरमान को देखा। उसने आगन्तुक को धरती से तीन बार झुक्कर सलाम किया। उसको पूरा विश्वास हो गया था कि सचमुच में ही वह दिल्ली दरबार का कोई बड़ा असरदार सरदार ही है। उसने यह जानने का भी यत्न नहीं किया था कि पत्र असली है या नकली। वह सरदार भी था या कुछ और. . .। एक बात तो सोलहो आने सही थी कि उसमें लगी हुई मुहर शाही की थी। इनको वह कैसे प्राप्त हो गई? कुछ कहा नहीं जा सकता था।

जफरखां ने बड़ी नम्रता और सम्मान से अश्वारोही सरदार की अभ्यर्थना की। 'सलाम हुजूर। शाही हुक्मनामें को पाये हुए मुद्दत हो गई है। काफी अरसे के बाद आप ऐसे किसी सरदार से दीदार हुआ है। गुस्ताखी मुआफ करें! आप कौन हैं? पहले तो आपको कभी देखा नहीं। लगता है कि बाहर से नये नये ही तशरीफ लाये हैं। नहीं. . . तो मुझे सभी सरदार जानते हैं। आप कोई बड़े ही खानदानी हैं। नाचीज खिदमत में हाजिर है।"

आगन्तुक बड़ा ही बातूनी था। मुंह लगा। बातों ही बातों में उसने यहां की सभी बातें उसके पेट से उगलवा लीं। छद्मवेशी सरदार को लगा कि यह तो बड़े काम का आदमी है इसको पटा कर रखना इष्ट साधना में सहायक होगा।

प्रयुत्तर में उसने कहा कि "कोतवाल साहब! आप तो बड़े ही

तजुर्बेकार हैं। पुराने दिखाई पड़ते हैं। बड़े दिलचस्प हैं। तुमको तो दिल्ली दरबार में होना चाहिए था। यहां कहां जंगल में पड़े हैं? . . . .मुझको बाकी खां कहते हैं। समरकन्द का बाशिंदा हूं। तुम ठीक फरमाते हो। अभी कुछ अरसे से ही मैं दिल्ली के तोपखाने में आया हूं। बादशाह सलामत के खास बुलाने पर ही मेरी यहां पर तैनाती हुई है। मैंने कुछ नई इल्म को हासिल किया है। यहां की तोपों का मुयायना और उनकी सफाई करवाने के लिए निकला हूँ। मेरे साथ के आये मिस्त्री भी बड़े ही तजुर्बेकार हैं। यहां के काम को दो - एक दिन में मैं अंजाम देकर बहुत जल्द ही वापस जाना चाहूंगा। उसके रखरखाव की कुछ खास हिदायतें भी दूंगा।''

''हुजुर! बस आपकी इनायत हो जाये। मेरा भला हो जायेगा जिन्दगी भर आपका शुक्रगुजार होऊंगा। अल्लाह से आपके रहमो-करम की दुआएं मागूंगा।. . . . कुछ और हुकुम हुजुर!'' कोतवाल ने कहा।

नये आये सरदार ने उसके मन में तरक्की की ललक जगा दी थी। सरदार ने अपने मन ही मन में कहा, ''बेटे ! जरा कल तक और इंतजार करो। खुदा की दोहाई करते - करते दोजख में जायेगा। वहीं पर जाकर मेरे सलामती की दुआ मांगना।''

नवागन्तुक उसकी ओर देख कर मुस्कराया और बोला, अच्छा. . . . अच्छा. . . उसको तो मैं दिल्ली में जाकर देख लूंगा। पहले यह तो बताओ कि इन गट्ठरों को कहां पर रखवाना है! देखो! यह बड़े इत्तिहादी का काम है। गोलों के फटने का भी डर है मैं इस काम को खुद अंजाम दूंगा। . . . .और हां . . .एक बात. . . और! यह तो बताना मैं भूल ही गया। बादशाह सलामत ने ईद के मुबारक दिन पर आप सबके लिए कुछ खास किस्म की उम्दा शराब भी भिजवायी है।'' उसकी आवाज में आदेशात्मक रोब था।

कोतवाल ने शराब के भाड़ों वाले मजदूरों को तो भोजनागार की ओर भेज दिया था और अन्यों को बारूदखाने में। दिल्ली का सरदार बारूदखाने की ओर बढ़ा। उसके कदम बिल्कुल नपे - तुले पड़ रहे थे। जैसे उनको गिन- गिन कर रख रहा हो। कितनी दूरी है? कहां तक तोपों की मार हो सकती है? इसका वह अंदाजा लगा रहा था।

बारूद - खाने में सभी प्रकार के गोले थे। दूर और समीप तक की मार कर सकने वाले, मझोले किस्म के भी थे। बड़ी पैनी निगाह से वह एक - एक वस्तु का निरीक्षण कर रहा था। उसने बड़ी सावधानी से अपने साथ आये हुए गोंडों द्वारा बारूंद के गट्ठरों को यथास्थान रखवाया। कोतवाल उसके साथ में था।

अब उसने जफरखां की ओर मुंह मोड़ा और धीरे से बोला, "कोतवाल! आज तो मैं बहुत थक गया हूं। तोपों की सफाई और मरम्मत का काम कल सबेरे से ही मेरे मिस्त्री शुरू कर सकेंगे। वे भी बड़े थके हुए हैं। मुझे भी आराम चाहिए। मेरा डेरा दिखाओ। इन मजदूरों और मिस्त्रियों को भी जगह बता दो!" यह कहता हुआ वह डेरे में प्रवेश कर गया।

कोतवाल ने हाथ के संकेत से उसे डेरा दिखाया था। वह शाही डेरे में ठहरा। डेरा बड़ा ही आलीशान था। शेष लोगों की व्यवस्था में अब कोतवाल लग गया था।

बुन्देलखण्ड और मालवा के मध्य में दक्षिण की दिशा में धामौनी स्थित था। झांसी से लगभग सौ मील से भी दूरी पर यह है। मुगलों का बहुत बड़ा सामरिक केन्द्र था। अपने समय का अति ही महत्वपूर्ण । उसकी भूमिका दक्षिण में प्रवेश द्वार के रूप में थी। दक्षिण की सम्पूर्ण गतिविधियों के सूत्र का संचालन इसी केन्द्र से होता था। खालिक खां नाम के फौजदार के हाथ में इसकी बागडोर थी। वह चतुर और कुशल सेनापति था। धामौनी से सात घंटे के फासले पर घने जंगल के बीच में स्थित था यह तोपखाना। छद्मवेशी मुगल सरदार यहां पर आ पहुंचा था। वह धामौनी के सैन्य केन्द्र का निरीक्षण करता हुआ, यहां पर आया था।

दूसरे दिन, सबेरे का समय था। बाकी खां ने अपने मिस्त्रियों के द्वारा तोपों का निरीक्षण और सफाई का कार्य शुरू करवा दिया। वह सबको काम समझा कर अपने तम्बू में घुस गया। कोतवाल उससे एकान्त में मिलने की प्रतीक्षा में बैठा था। उसको बात करने का अच्छा अवसर मिल गया था। दोनों में इस बीच में दोस्ताना भी हो गया था। दोनों एक ही आयु के थे। जफरखां की झिझक दूर हो गयी थी। वे खुलकर बातें करने लगे थे। वैसे तो दोनों में पद के स्तर पर कोई भी समानता न थी। कहां वह बड़ा सरदार और

यह एक छोटा सा कोतवाल, पर दोनों के बीच में दूरी कम हो गई थी। विश्राम के क्षणों में जफ़र उसके पास आया और कुछ देर तक बाकी खां के सामने खड़ा रहा।

सरदार ने सिर उठाया और बोला, "कहिए जफर मियां! क्या बात है? तुम तो मेरे दोस्त हो। मुझसे बोलने में हिचक कैसी? साफ - साफ बताओ। डरो मत।"

सरदार से प्रोत्साहन पा कोतवाल मुस्कराकर बोला, "हुजूर! यहां तो हमारी जिन्दगी वीरान सी हो गई है। अगर आपकी इनायत हो जाती तो कम से कम आज की रात तो रंगीन हो ही जाती। खुरासानी शराब को जिसको चखे हुए बहुत अर्सा गुजर गया है, ऐसी मनहूस जगह पर आपने हमको मुहैय्या करा दिया। हम सभी आपके शुक्र गुजार हैं। हमने तो ख्वाब में भी नहीं सोचा था कि वह हमें यहां नसीब हो सकेगी। जनाब बस एक बात की कसर रह गयी है। अगर आप इसका इशारा कर दें तो तुरंत वह भी पूरी हो सकती है. . . फिर तो बड़ा ही मजा आ जायेगा।"

इतना कहकर जफ़र कुछ क्षणों के लिए अटका। कदाचित वह बाकी खां के चेहरे के उतार - चढ़ाव हाव - भाव को पढ़ रहा था। कहीं उसकी बात का सरदार पर कोई बुरा असर तो नहीं पड़ा है। पता नहीं बाकी खां ने उसकी बात को समझा या नहीं। वह कोतवाल को एकटक देखता रहा।

'हूं' कहकर सरदार चुप रहा।

कोतवाल ने हिम्मत बांध कर पुनः कहा, "गरीब नवाज! मालिक! बस आपका डर है। आपकी आंख का इशारा भर हो जाये. . . बस. . . हूरों का इन्तजाम तो मैं आनन फानन करवा दूंगा। आपको तो यहां जंगल ही लगता होगा लेकिन एक से एक नायाब चीज यहां मिल जायेगी।"

बाकी खां ने बड़े ध्यान से उसकी बात को सुना। वह हौले से मुस्करा कर रह गया।एक प्रकार से यह उसकी मौन स्वीकृति थी। कम से कम कोतवाल ने तो उसका यही अर्थ समझा था। यहां की यह परिपाटी थी। अफसर के सामने उसको कुछ संकोच हो रहा था। वैसे यहां के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। मुगलों के अधिकारियों और सैनिकों में न्यूनाधिक मात्रा में यह दुर्बलता थी। नवागन्तुक सरदार ने उसका लाभ उठाने को सोचा

हो तो कोई आश्चर्य नहीं था।

कोतवाल ने एक गोंड मजदूर की ओर इंगित करते हुए कहा, ''क्यों बे धुरूआ! यहां पर वे मिल जायेंगी. . .ना. . .। तुझे मैं मालामाल कर दूंगा। बस. . . . आज रात. . . भर के लिए ही . . .तो चाहिए। तू . . नहीं जानता. . .हुजूर ! दिल्ली से तशरीफ लाये हैं। बड़े रंगीन मिजाज के हैं!. . . खूबसूरत. . . . चाहिए। मुझे तो ऐसी वैसी भी . . . चल जायेगी. . . ।'' यह कहते - कहते सहसा वह रूका।

तत्क्षण ही फिर बोल पड़ा, ''हुजूर! नाराज तो नहीं हो गए हैं।''

''नहीं . . . . नहीं. . . ऐसी. . . कोई . . . बात नहीं। वैसे मुझे इसकी कोई आदत नहीं। लेकिन कभी - कभी लुत्फ तो लेना ही चाहिए। तुम सबको तो बीवी बच्चों से अलग हुए भी बहुत अर्सा बीत गया है।'' सरदार ने कोतवाल के प्रत्युत्तर में कहा-

''सैंया भये कोतवाल, अब डर काहे का।''

''अब डर काहे का। जब आला असफर का बहुत ही स्पष्ट आदेश मिल गया था तब डर काहे का?

उसने मुंह बिचका कर गोंड से पूछा, ''अबे बोल! बोलता क्यों नहीं? हो जायेगा ना. . . ।''

उनमें से एक गोंड युवक के चेहरे पर क्रोध की रेखाएं उभरती हुई झलकीं।. . . किन्तु यकायक वह संयत हो गया।

''खीं . . . खीं . . खीं हो. . .हो. . .'' दांत निकाल हंस पड़ा।

उसकी यह हंसी बनावटी थी। सम्भवतः दिल्ली दरबार के सरदार ने कनखियों से उसको कुछ संकेत कर दिया था। आंखों - आंखों में ही दोनों की कुछ बातें हो गई थीं।

एक क्षण में ही स्वस्थ हो वह मजदूर बोला, ''हुजूर! हम तो आपके ताबेदार हैं। यहां क्या कमी है, उनकी? जंगल में भरी पड़ी हैं। लेकिन गरीब परवर!. . .उनको दिन के उजाले में लाना खतरनाक होगा। बड़ा कठिन काम है। रात के अंधेरे में ही वे आ सकेंगी।. . .हमारे कबीले वालों ने अगर देख लिया तो हमारी तो जान ही गई समझो आप पर भी शामत आ जायेगी। हुजूर। वे बड़े ही खूंखार हैं।. .मालिक! कुछ पहले मिल जाता. .तो. .।''

"गधे कहीं के! उल्लू के पट्ठे। तू नहीं जानता! यहां पर हम मुसलमानों का राज है। बड़े आये. . . वे खूंखार. . . ! सालों की जान ले लूंगा। तू क्यों डरता है?. . . मैं तो सिर परस्त हूं ही। रहा उनको लाने की बात मैं अभी की कौन बात करता हूं? रात में ही तो चाहिए। जा. . . । उनका इन्तजाम कर।" यह कहते हुए उसने मजदूर की ओर कुछ दीनार फेंक दिये।

उस गोंड की ओर देखकर सरदार थोडा मुस्कराया था। उसकी मुस्कान रहस्य भरी थी।

गोंड बोला, "चिन्ता न करें। हुजूर? एक पहर रात चढ़े तक वे सभी आपकी गोद में होंगी। कुछ नाच. . . वाच. . .का बन्दोबस्त होगा। हुजूर! मुझको अभी ही जाना है। उनको खोजना भी तो होगा।"

"अबे जा! तुझे कौन रोकता है? जाता क्यों नहीं? हां देख! इन दीनारों से शराब पीकर मस्त हो कहीं पड़े न रहना। यह काम जरूर हो जाना चाहिए. . . नहीं तो तू जिन्दा नहीं रहेगा। समझा?" कोतवाल ने उसको डांटा।

उस गोंड के नेत्रों में एक अजीब सा आकर्षण था। था तो वह काले शरीर का, पर उसके शरीर का गठन एवं सौष्ठव ऐसा था कि वह बड़ा ही मन मोहक दीखता। उसको तो जैसे मन की मुराद ही मिल गई। अपनी योजना को क्रियान्वित करने का मुगल फौजदार ने स्वयं ही अवसर प्रदान कर दिया था। वास्तव में वह था, गोंडों का राजा। छत्रसाल का अति विश्वस्त। उनकी गोंड सेना का नायक। उसके सैनिक ही उसके साथ मजदूरों के वेश में आये थे। अब तो उसको पूरी छावनी में बे रोक टोक कहीं भी आने जाने का परिचय पत्र भी मिल गया था। दिल्ली का सरदार भी नकली ही था।

दूज का चांद निकला। कुछ समय के पश्चात ही धीरे - धीरे अंधेरे ने सम्पूर्ण क्षेत्र को अपनी बाहों में समेट लिया। डेरों में मशालें जल उठीं बारूदखाने के पास ही एक बड़ा सा शामियाना खड़ा किया गया था। उसमें ही ईद का जश्न मनाने की व्यवस्था की गई थी। शराब का दौर चल पड़ा। उस गोण्ड का अभी तक कोई अता - पता नहीं था। हूरों की प्रतीक्षा में लोगों की आंखें पथरा रही थीं। मुगल सैनिक अपने होशोहवाश खो बैठे थे। कुछ तो

मदमत्त हो अश्लील हरकतें भी करने लगे थे। जिनको शराब न पीने की कड़ी हिदायतें दी गई थीं, उन्होंने भी बहते दरिया में अपने हाथ धोये थे। वे भी नशे में बेकाबू हो रहे थे। अपने - अपने स्थान छोड़ यहां का मजा लूटने को आ गये थे। लोग इधर - उधर लुढ़कने लगे थे।

बारूदखाने की सुरक्षा घोर अव्यवस्थित हो गई थी। अभी एक पहर की रात भी नहीं बीत पाई थी कि कुछ छायाएं पड़ाव में प्रवेश करती दिखाई दीं। उनकी आकृतियां स्त्रियों जैसी थीं। कम से कम उनका पहनावा तो ऐसा ही था। उनके साथ में वही गोंड सरदार था। वे शामियाने में आकर जम गईं। कुछ तो अधिकारियों के खास डेरों में ले जायीं गईं। दिल्ली दरबार के सरदार के डेरे में भी एक सुन्दर स्त्री थी। पता नहीं वह स्त्री ही थी या स्त्री वेश धारी पुरुष!

ढोलों की थाप, मजीरों और नूपुरों की झनकार ने खूब रंग जमाया। हूरों के नाच ने तो रही - सही कमी को पूरा कर दिया था। सभी अर्ध बेहोश से थे। अधिकांश पर तो शराब का असर था। जो कुछ थोड़े बहुत होश में थे। उनको भी नाचगान ने मदहोश बना दिया था। पता नहीं कैसी थी, वह शराब? उसमें हल्का सा विष या नींद की दवा अवश्य मिलाई गयी थी। वह कैसे? पता नहीं। कुछ अवश्य था, नहीं तो वे इतने बेकाबू कैसे हो जाते?

"धांय . . . धांय . . .धांय. . . धड़म्. . .धड़म्" की आवाजें गूंज उठीं। गोले दगने लगे थे। कान के पर्दे फटे जा रहे थे। बारूदखाने में भी विस्फोट हो रहा था। पता नहीं गोले बाहर से आकर गिर रहे थे या बारूदखाने से। चमक से आंखें चुंधिया गई थीं। आग की लपटों में पूरी छावनी आ गयी थी। धू - धू करके डेरे तम्बू भी जल उठे। आग में और विस्फोट में मुगल सैनिक झुलस - झुलस कर मर रहे थे। चारों ओर भगदड़ मची हुई थी। मुगल सैनिकों का लड़ना तो दूर रहा। उनके पैर तक भी जमीन पर ठीक से नहीं पड़ पा रहे थे। लड़खड़ा रहे थे। सभी के प्राणों पर आ बनी थी।

दिल्ली से आया दल और गोंड मजदूरों तथा हूरों का भी कोई अता पता न था। वे न जाने कब वहां से खिसक गये थे? जब आग के शोले कुछ शान्त हुए तो सैकड़ों वन में से निकल आये। बचे - खुचे

मुगल सैनिकों के सीनों को तीरों से बींध डाला। ये सम्हल गये थे। किन्तु टिक न सके। तीर विष बुझे थे। ये गोंड सैनिक पहले से ही झाड़ियों और वृक्षों की ओट में छिपे बैठे थे। स्त्री वेशधारी हूरें वस्तुतः छत्रसाल के सधे हुए सैनिक ही थे।

यह सारी कारगुजारी उस गोंड सरदार की ही थी। उसने दोपहर में मुगल छावनी से बाहर निकल कर यह सब ताना बाना बुना था। जफर खां सहित सभी मुगल सैनिक परलोक सिधारे थे। उनमें से कदाचित कोई जीवित बाहर निकल सका हो। जो बचा भी रहा होगा, विष ने उसको भी सदा के लिए पंगु बना दिया होगा। छत्रसाल के सैनिकों ने सभी तोपों पर अपना अधिकार कर लिया था। शराब के दौर के समय ही बहुत कुछ गोला बारूद वे बाहर निकाल ले गये थे।

ठीक उसी समय धामौनी के मुख्य केन्द्र पर भी आक्रमण चल रहा था। वहां का नेतृत्व स्वयं छत्रसाल ने ही सम्हाल रखा था। मुगल सेनापति खालिक खां कोई कम शूरवीर तो था नहीं। उसने तो एक बार छत्रसाल को पीछे हटने को मजबूर कर ही दिया था।. . . . किन्तु उनका दूसरा आक्रमण इतना प्रचंड था कि मुगल सेना के पैर उखड़ गये। वे टिक न सके। खालिक खां धामौनी छोड़ कर भाग गया था। नेतृत्व विहीन मुगल कब तक लड़ते? बहुत बड़ी संख्या में शत्रु बेमौत मारे गये थे।

धामौनी पर भी छत्रसाल का पूरी तरह से अधिकार हो गया था। उस पर हिन्दू पताका भगवा झंडा लहरा उठा था। धामौनी के केन्द्र और वन में स्थित तोपखाने की छावनी पर एक साथ योजनाबद्ध रूप से आक्रमण की रचना बनाई गयी थी। सभी योजनाओं को इतनी चतुराई और सावधानी से क्रिया गया था कि मुगलों को उसका आभास तक न हो सका था।

धामौनी का राजनैतिक और सामरिक महत्व छत्रसाल को ज्ञात था। बुन्देलखण्ड से मुगलसत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए उस पर अधिकार करना अपरिहार्य हो गया था। लेकिन यह कार्य इतना सरल न था छत्रसाल के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी, तोपों का न होना। अतः उन्होंने पूरी तैयारी करके ही इन दोनों स्थानों पर एक साथ धावा बोला था। वन में तोपों पर कब्जा और उसको अपने पास बनाये रखने के लिए धामौनी का मुगल केन्द्र ध्वस्त करना

भी उतना ही आवश्यक था।

"मियां की जूती - मियां की चांद" की कहावत पूरी तरह से चरितार्थ हुई थी। मुगलों की तोपें, मुगलों को ही झुलसाने और मारने के काम में आने लगीं थीं। इस युद्ध में शाही फौज की अनेकों तोपें और गोला बारूद छत्रसाल के हाथ लगी थीं। युक्ति और प्रयत्न से क्या नहीं हो सकता? कभी - कभी तो उससे असम्भव भी सम्भव बन जाता है।

— * —

जिसने मरना सीख लिया जीने का अधिकार उसी को

सर्र. . सर्र. . .सर्र. . . .सरपट वह चढ़ता चला जा रहा था। ऊँचा पर्वत जैसे उसके लिए कोई सपाट चौरस मैदान ही हो। कोई बाधा उसको रोक न सकी। यह तो उसका नित्य का अभ्यास था। वह कुछ क्षणों में ही पर्वत के शिखर पर जा पहुंचा। उसने चारों ओर दृष्टि घुमाई। नैसर्गिक छटा को निरख कर वह मुग्ध हो गया। यह भी भूल गया कि वह कहां पर खड़ा है? उसको अपने तन - मन की भी सुध न रही थी। वह मुगल सेना की टोह लेने को ऊपर चढ़ा था।

दिल्ली के सुल्तान औरंगजेब का एक अति विश्वस्त सेनापति था। उसका नाम था तहव्वर खां। बादशाह को उससे बड़ी आशाएं थीं। उसने, उसको छत्रसाल का दमन करने को भेजा था। अपनी सल्तनत की पूरी शक्ति उसकी सहायता में झोंक दी थी। छत्रसाल को अपने गुप्तचरों द्वारा उसके आगमन का पूरा समाचार मिल गया था। पहाड़ी के पीछे की ओर मुगल सेनापति अपनी विपुल सेना के साथ डेरा जमाये पड़ा था।

सहसा कुछ मुगलों की दृष्टि शिखर पर जा पड़ी। उन्होंने छत्रसाल को वहां पर खड़े देखा। मुसलमान सैनिकों ने उनको पहचानने में भूल नहीं की। सचमुच में वे छत्रसाल ही थे। अकेले ही पर्वत की चोटी पर चढ़ गये थे। मुगल प्रसन्नता से झूम उठे।उन्होंने सोचा बस यही सुनहरा अवसर है, उसको पकड़ लेने का। यह तो बिल्कुल अकेला है। कुछ न कर सकेगा। उसको यदि जिन्दा पकड़ लिया तो दिल्ली के बादशाह से बड़ा पुरस्कार

मिलेगा। अनायास हाथ में आई चिड़िया को वे क्यों छोड़ देते? औरंगजेब ने उनको पकड़ने का ढिंढोरा पिटावाया था। जिंदा या मुर्दा।

मुगल सिपाही तेजी से ऊपर चढ़ने लगे। यद्यपि उनको चढ़ने में कठिनाई हो रही थी। फिर भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा। कई बार तो वे लुढ़कते - लुढ़कते भी बचे थे। वे छत्रसाल को पकड़ने जा रहे हैं, उन्होंने इस बात को अपने सेनापति अथवा टुकड़ी के नायक से भी छिपाई थी। उनको बंदी बना लेने का पूरा श्रेय वे स्वयं ही लूटना चाहते थे। छत्रसाल तो अपने विचारों में इतना खोये थे कि उनका ध्यान बढ़ते हुये शत्रुओं की ओर बिल्कुल न जा सका था। यद्यपि वे शत्रु की प्रत्येक गतिविधि पर अपनी पूरी नजर रखते थे पर उस दिन न जाने क्या हो गया था, उनको? . . .पता नहीं वे कैसे चूक गये? उन्होंने अपने राज्य में ऐसी सुन्दर व्यवस्था बनायी थी कि उनको शत्रु की सभी हलचलों की जानकारी नियमित रूप से मिलती रहती थी। उनके गुप्तचर इतने सक्रिय और चतुर थे कि वे शत्रुओं की आंख बचा कर विभिन्न सूत्रों में मुगलों की छावनियों में विचरण करते रहे थे।

छत्रसाल को तहव्वर खां से सीधे युद्ध में पार पाना कठिन था। इसीलिए उन्होंने छापामार युद्ध की योजना बनायी थी। उन्होंने अपनी सेना को कई भागों में विभक्त किया था। आस पास के सभी पर्वतों, वनों, व झाड़ियों में तथा दुर्गम मार्गों पर उनको नियुक्त किया था। सभी शत्रुओं पर घात लगाये बैठे थे। तहव्वर खां द्रुतगति से बढ़ता चला आ रहा था। उसे सबसे बड़ा अचम्भा तो इस बात का था कि छत्रसाल की सेना का कहीं भी नामोनिशान तक न दिखाई दिया!

अब वह निश्चिन्त हो गया था। उस बेचारे को क्या पता था कि बुन्देले और गोंड उसकी ताक में गिरि - कन्दराओं में छिपे बैठे हैं। वह मैदानों को पार करता हुआ दुर्गम पर्वतों की तलहटी में आ पहुंचा था। आगे का मार्ग कठिन था। उसको देख कर बड़े बड़े साहसियों के भी छक्के छूट जाते। थकी हुई मुगल सेना ने वहीं पर विश्राम करने का निर्णय ले लिया था। डेरों, तम्बुओं, छोलदारियों और शामियानों का एक शहर सा ही बस गया था। वह पहाड़ की दूसरी ओर था। छत्रसाल उसको ही देखने को ऊपर को चढ़े थे।

छत्रसाल की ओर बढ़ रहा एक सैनिक अकस्मात फिसल पड़ा। उसके

लुढ़कने के साथ ही कुछ पत्थर भी लुढ़क पड़े। धड़म. . .धड़म्. . . धड़म्. . धड़धड़ाती लुढ़कती टकराती आवाजें पूरे पहाड़ में प्रतिध्वनित हो उठीं। छत्रसाल ने अपनी ओर बढ़ते शत्रु सैनिकों को देखा। वे हतप्रभ रह गये। एकाकी थे। शत्रुओं की संख्या अधिक थी। उनके सामने 'करो या मरो' के सिवाय और कोई अवलम्ब न था। सुरक्षित निकल जाने का भी कोई मार्ग न दीखा। इधर शत्रु सैनिक और उनकी विशाल छावनी। उन्होंने अपने कंधे से धनुष उतारा। प्रत्यंचा खींची। उसमें से बाण छूटे। कई मुसलमान सैनिक धराशायी हो गये।

लच्छे रावत और बागराज परिहार कंदरा में छिपे बैठे थे। दोनों ही बड़े निष्ठावान, स्वामिभक्त और ध्येयवादी थे। उनकी नजर छत्रसाल का पीछा करते मुगल सिपाहियों पर पड़ी। उन्होंने आसन्न संकट देखा। सन्न रह गये। अपने प्राणप्रिय नेता का जीवन खतरे में है। वे क्या करें? स्वयं का जीवन महत्व का है या स्वाधीनता के इस चेता का? छत्रसाल की रक्षा की जाये या अपनी? दोनों में से केवल एक को चुनना था। कोई और चारा न था।

उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाने का निश्चय कर लिया। तुरन्त वे मुगलों के पीछे भाग चले। पहाड़ी पर चढ़ दौड़े। छत्रसाल तक पहले कौन पहुंचता है? मुगलों और बुन्देलों में होड़ लगी हुई थी। शत्रु आगे - आगे थे और उनकी मौत पीछे - पीछे। बागराज और लच्छे रावत के नेतृत्व में चढ़ती हुई टोली तो पर्वतों के कीड़े थे। वे विद्युत गति से दौड़े। एक - एक पगडंडी से परिचित थे। जिस फासले को वे पार कर जाते, उसको ही करने में मुगलों को तिगुना समय लग जाता। छत्रसाल और शत्रुओं के बीच में एक अभेद्य दीवार बन कर जा डटे। मुगल उनको देख सन्न रह गये।

"हाय. . .अल्ला. . .ये शैतान यहां कैसे आ गये? बेड़ा गर्क हो गया।" मुहम्मद ने अपने साथी से कहा। सबका मुंह धुंआ हो गया।

मुगल सिपाहियों को निशाना बना कर बुन्देलों ने ऊपर से पत्थर लुढ़काना शुरू कर दिया। शत्रुओं का सम्हलना कठिन हो गया। वे उससे कुचल गये। पिस - पिस कर अकाल मृत्यु को प्राप्त कर रहे थे। इक्के दुक्के जो बचे भी थे वे विषैले तीरों के शिकार बन गये। उन्होंने उनको इस ढंग से

घेरा था कि उनमें से एक भी जीवित वापस न लौट सके। क्योंकि उनका लौटना बड़ा ही भयावह होता। पीछे पड़ी मुगल छावनी में छत्रसाल की सारी योजनाओं का भंडाफोड़ हो जाता।

पर्वतों में बुन्देले छिपे बैठे हैं। मुहाने को गोंड सैनिकों ने घेर रखा है। यदि उस ओर नीचे पड़ी मुगल सेना को इसका जरा सा भी आभास हो जाता तो छत्रसाल की सारी योजना पर पानी ही फिर जाता। उनको निर्धारित समय पर ही यकायक चौतरफा से आक्रमण करना था। एक भी शत्रु सैनिक पहाड़ी से जिन्दा वापस न लौट सका। कोई विशेष हलचल भी नहीं हुई थी।

इसके लिए बुन्देलों को भी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी थी, तब कहीं जाकर छत्रसाल के जीवन की रक्षा हो पायी थी। इस बलिदान यज्ञ में हरिशंकर मिश्र, नन्दन छीपी, कृपाराय आदि कई वीरों को अपने प्राणों की आत्माहुति देनी पड़ी थी। ये सभी भाड़े के टट्टू नहीं, स्वातंत्र्य संग्राम के वीर योद्धा थे। इन देशभक्तों के जीवन का बस एक ही सपना था। बुन्देलखण्ड पर हिन्दवी स्वराज्य की पताका को फहराना। इसी के लिए वे जिये और मरे भी। इसीलिए उनका अप्रतिम शौर्य और पराक्रम प्रकटा था।

छत्रसाल थे कर्णधार! वे मरे किन्तु स्वराज्य संस्थापक को जीवन दान मिला। उन्होंने अपनी आयु को अपने नेता पर निछावर कर दिया था। इसीलिए मर कर भी इतिहास में वे अमर हो गये। मरते तो सभी हैं. . . कीड़े - मकोड़े भी. . . सार्थकता किसमें है? अपने जीवन का उन्होंने उत्सर्ग किया। राष्ट्र को नया जीवन दान मिला। स्वराज्य आन्दोलन को चिरंजीवी बनाया। अपनी बलि देकर इतिहास में वे एक गौरवशाली पंक्ति जोड़ गये। सभी मरते हैं. . . उनको कौन याद करता है? यदि वे मरकर अमर नहीं बनते तो आज लेखकों की लेखनी उन पर क्यों चलती?

'तेरा वैभव अमर रहे मां हम दिन चार रहें न रहें' की उदात्त भावना से उनके अन्तः करण प्रज्ज्वलित थे। ठीक ही तो कहा गया है कि 'जिसने मरना सीख लिया जीने का अधिकार उसी को।' यदि उस दिन उन्होंने छत्रसाल की रक्षा न की होती तो क्या बुन्देलखण्ड पर स्वराज्य का झंडा फहराता? इस प्रश्न का उत्तर क्या है? उत्तर आप स्वयं देवें।

जितेन्द्रिय

छत्रसाल युवा थे। बात है उसी समय की। उनका कद लम्बा था। शरीर के एक-एक अवयव अति सुगठित और सुडौल थे। नेत्रों में अनोखा ही आकर्षण। मुखमंडल तेजस्वी आभा से युक्त था। उनका गौरवर्ण का मुखड़ा किसी के भी मन को मोह लेता। लोगों की आखें बरबस उनकी ओर खिंची चली जातीं। वृद्ध एवं वृद्धायें उनमें अपने पुत्र की छवि निहारतीं। युवक उनको अपने सुहृद के रूप में पाते। सैनिक अपने नेता की दृष्टि से देखते। उनके एक संकेत पर मर-मिटने को सदा तत्पर रहते।

कुमारियाँ मन ही मन अपने इष्टदेव से प्रार्थना करतीं कि "भगवन! मुझे भी छत्रसाल ऐसा ही-वीर और तेजस्वी पति दो। बच्चे तो उनको चाचा-चाचा कह कर घेर लेते। वे भी उनको रोचक कहानियाँ सुनाते। उनकी बोली में एक ऐसी मिठास थी कि सभी उस पर लट्टू हो जाते। सारे बुंदेलखंड में वे इतने लोकप्रिय हो गये थे कि सभी के आशा के केन्द्र बन गये। जन-जन उनको अपने त्राता के रूप में देखता। ऐसा आकर्षक था उनका व्यक्तित्त्व।

यदि किसी की धन सम्पदा नष्ट हो जाती है तो वह कुछ भी नहीं खोता। क्यों कि उसका अर्जन पुनः किया जा सकता है। स्वास्थ्य में अगर घुन लग गया तो अवश्य कुछ हानि होती है। शरीर में ही तो स्वस्थ मन और मस्तिष्क रह सकता है। शरीरमाद्यंखलु धर्म साधनम्। ध्येय साधना का वही तो अनुपम साधन है। माध्यम। किन्तु यदि चरित्र भ्रष्ट हो गया तो उसको कोई भी नहीं बचा सकता। वह सर्वस्व से हाथ धो बैठता है। पतन की ओर उन्मुख हो जाता है। मन का गुलाम बन जाता है। वीर छत्रसाल धन, स्वास्थ्य

और शील इन तीनों गुणों के धनी थे।

दुपहरिया का समय था। ग्रीष्म ऋतु का। उन दिनों में बुंदेलखंड की धरती जल उठती है। संपूर्ण पठारी क्षेत्र भयंकर लू की चपेट में झुलस रहा था। रात अवश्य ही कुछ ठंडी और सुहावनी हो जाती है। दिन में तो सूर्य की ताप से दग्ध पत्थर तो जैसे आग ही उगलने लगते हैं। ऐसे ही समय में छत्रसाल अश्व पर सवार होकर कहीं जा रहे थे. यदा-कदा वे स्वयं भी शत्रु की खोज-खबर लेने को निकला करते थे। बिल्कुल अकेले थे। सारा शरीर पसीने से लथपथ था। बहुत थके हुए थे। उनके भव्य भाल पर पसीना चुहचुहाकर बह निकला था। बीच-बीच में वे अपने साफे के एक छोर से श्रम बिंदुओं को पोंछते जाते। कहाँ विश्राम करें? आस-पास कहीं कोई छायादार वृक्ष नहीं दीखा। बेमन वे टप्....टप्....टप्.... घोड़े को दौड़ाते आगे ही बढ़ते चले गये।

एक ग्राम के निकट पहुँचे। वहीं पर उनको फलदार एवं छायादार वृक्षों का एक छोटा सा बगीचा दीखा। यहीं पर उन्होने थोड़ी देर तक विश्राम करने का मन बनाया। अश्व भी वहीं बुरी तरह से हाँफ रहा था। उसकी स्थिति को देखकर उनको तरस आ गया। उसकी छाती धौंकनी ऐसी धौंक रही थी। नथुने फूल रहे थे। वे उस पर से उतर पड़े। एक पेड़ की छाँव में उसको बांध दिया। कमर से फेंटा खोला। धरती पर उसको बिछा दिया। मस्तक पर से पगड़ी उतारी। उसका ही सिरहाना लगा वृक्ष की छाया में लेट गये। उनको न जाने कब नींद आ गई?

आखें खुलीं। विस्मय से हैरान रह गये। देखा, एक रूपवती युवती सामने खड़ी है, वह विमुग्धा सी उनको एकटक निहारे जा रही थी। कुछ समझ में न आया। वह यहाँ पर क्यों आई है? उनका माथा घूम गया था। कहीं यह कोई जादूगरनी तो नहीं है। जादू-टोना करने को आई हो। उन दिनों में जादू-टोना का अंधविश्वास बड़ा प्रचलित था। वे हड़बड़ा कर उठ बैठे।

उससे पूछा, ''देवि आप कौन हैं? यहाँ पर क्या कर रही हैं? मुझसे कोई काम है क्या? किसी आपदा की मारी तो नहीं हैं? मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ।''

छत्रसाल ने समझा था कि यह नवयौवना सचमुच ही किसी संकट में है। अपनी आप-बीती, दुखड़ा उनको सुनाने को आई है। उनके लिये यह कोई नई बात नहीं थी। साधारणतया इसी प्रकार के लोग प्रायः उनके पास आते रहते थे। अपनी कष्ट कथा सुनाते। यथाशक्य वे उनकी सहायता भी करते। अतः बड़ी सहजता से वे उससे उक्त प्रश्न पूँछ बैठे थे।

युवती की दृष्टि नीचे की ओर गड़ी हुई थी। वह अपने पैर के नख से धरती को कुरेद रही थी। सम्भवतः लज्जा ने उसको आ घेरा था। वह बोलने में सकुचा रही थी। सोच रही थी कि ऐसी बात कहे या नहीं। विवेक और अविवेक में विपुल युद्ध छिड़ा हुआ था। उसका मन इसी झूले में पेंगें मार रहा हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

''बहन! निःसंकोच रूप से कहो! क्या बात है?'' छत्रसाल ने उससे पूँछा।

'बहन' यह शब्द सुनते ही उसका चेहरा फक पड़ गया था। उसने साहस जुटाया। छत्रसाल से जो कहना था सो एक झटके में ही कह डाला। उसकी अभिलाषा को सुन छत्रसाल तो एक क्षण को संज्ञाशून्य से हो गये। दंग और अवाक्। यह उनका पहला अनुभव था। उसको क्या उत्तर दें? असमंजसता में पड़ गये थे। तुरन्त कुछ उत्तर नहीं सूझा।

वासना की इन्द्रियां जब शिथिल हो जाती हैं तब तो उन पर नियंत्रण कर पाना सरल हो जाता है- किन्तु यौवन जब अपनी पूर्णता और चरम सीमा पर होता है तब मन, मस्तिष्क और वासनेंद्रियों को अपेक्षाकृत काबू में रख पाना कठिन होता है।.....और वह भी जब सुनसान एकान्त स्थान हो। कोई सौंदर्यवती युवती सामने खड़ी हो और स्वेच्छा से प्रणयदान की याचना कर रही हो। ऐसे क्षणों में भी जो अडिग रहता है, वही इन्द्रिय-जयी, जितेंद्रिय कहलाता है। ऐसे क्षणों में बड़े-बड़े साधक और तपस्वी की भी परीक्षा हो जाती है।

छत्रसाल को लगा कि यह युवती उनकी परीक्षा ही लेने को आई है। उस दृश्य को देख उन्होंने आँखें मूँद लीं। युवती पर काम का मद सवार था। उसके गात थर-थर काँप रहे थे। उसकी कामेंद्रियाँ प्रदीप्त हो उठीं थीं। चेहरा लाल हो गया था।

उसने छत्रसाल से बड़ी निर्लज्जता से प्रणय निवेदन किया था, कि, ''वीर पुँगव! मेरी उत्कट अभिलाषा है कि तुम मुझे अपने अंक में समेट लो! मुझको अपनाये! मैं आपके संसर्ग से एक संतान चाहती हूँ। तुम जैसा ही वीरपुत्र मेरी कोख से जन्में।'' काम पीड़ा से आहत उसका चेहरा तमतमा उठा था।

छत्रसाल की तो सिट्टी-पिट्टी ही गुम हो गई। उनकी बोलती बंद थी। दोनों के लिये परीक्षा की घड़ी आ उपस्थित हुई थी। छत्रसाल की जितेन्द्रियता और युवती के सद्‌विवेक की। महर्षि विश्वामित्र के सामने मेनका भी ऐसे ही खड़ी रही होगी। वे तो क्षणिक आवेग में फिसल पड़े थे किन्तु वह वीर चरित्र की कसौटी पर खरा उतरा था। कुछ ही क्षणों में वे स्वस्थ हो गये।

उनका चित्त स्थिर हो गया था! ''बाई जी! मैं हौं छत्ता! तोरौ लरका! (हे माता! मै छत्रसाल हूँ, तेरा पुत्र!)'' उन्होंने उससे कहा था।

उनके इस वाक्य ने ही उसको पानी-पानी कर डाला था। उसकी वासना की अग्नि पर शीतल जल की फुहार पड़ गई। उसकी क्षणिक उत्तेजना शांत हो गई। जिस मोहजाल में वह जा फंसी थी वह कट चुका था। उसका विचलित मन ठिकाने आ लगा था। उसमें से निकल आई थी, एक वात्सल्यमयी जननी!

उसके मन ने कहा, ''धरती मैय्या! तू फट जा! मैं पापिनी उसमें समा जाऊँ! छिः...... छिः...... तू कैसी है री? प्रणय की याचना.... वह भी अपने पुत्र से ही...! ओह! यह मैने क्या कर डाला? यह तो घोर पाप है। अनर्थ है।'' उसकी अन्तरात्मा ने उसको कुरेदा और झकझोर डाला।

वह शर्म से डूब गई थी। उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। पश्चाताप की गंगा में अवगाहन कर उसका मन शुद्ध और निर्मल हो चुका था। यदि उस समय छत्रसाल उसको सम्हाल न लेते तो शायद वह आत्महत्या ही कर डालती। उन्होंने उसके मन की अवस्था को भांप लिया था। उसने छत्रसाल को सच्चे मन से अपना पुत्र स्वीकार कर लिया था। व्यक्ति के जीवन में बहुत बार ऐसे क्षण आते हैं। यह अस्वाभाविक नहीं। शरीर धर्म की मानव सहज दुर्बलता न्यूनाधिक मात्रा में सबमें होती हैं।

छत्रसाल ने भी एक निष्ठावान् पुत्र के समान उसको मां का सम्मान

प्रदान किया था। पता नहीं उसने विवाह किया या नहीं। इतिहास इस पर मौन है। कालान्तर में उसके धर्म पुत्र छत्रसाल ने अपनी इस मुँहबोली माता के लिये एक हवेली का निर्माण करवाया था। पन्ना से थोड़ी दूर पर यह स्थित है। "बंऊआ जूँ की हवेली!" (माता जी की हवेली) के नाम से आज यह प्रसिद्ध है। दोनों जब तक जीवित रहे, माँ-बेटे का धर्म निभाया। बंऊआ जी पुत्र की स्मृति में जीवन पर्यन्त वहीं पर रहीं थीं।

अब न तो बंऊआ जूँ हैं और न ही छत्ता! लेकिन आज भी खड़ी है वह हवेली! इतिहास की वह पंक्ति! छत्रसाल के इन्द्रियनिग्रही जीवन तथा उनके निर्मल व उज्वल चरित्र की कीर्ति की गाथा गा रही है।

— * —

विजय ही विजय

"अमा यार! कोई आदमी हो तो उससे लड़ें भी। वह तो पूरा शैतान ही है। जरूर ही किसी जिन्न या प्रेत की रूह होगी।. . . . अभी यहाँ तो कुछ लमहों में ही वहाँ। न जाने कैसे वह मीलों दूर तक पहुँच जाता है? कोई आदमी तो ऐसा कर नहीं सकता। सिपहसालार की तो उसने ऐसी बुरी हालत कर डाली थी कि बस पूछो मत! खुदा की रहम है। मेरी जान बच गई। देखा नहीं तुमने! उसने देखते ही देखते न जाने कितनों को मार गिराया था?"

"अरे मियाँ! मैंने तो यह भी सुना है कि वह जब चाहता है, तब उड़ जाता है। उसको कोई देख भी नहीं पाता। ताज्जुब तो यह है कि वह सबको देखता रहता हैं। फौजदार तहव्वर खाँ को तो उसने उड़ कर ही कैद किया था। भाई जान! यह झूँठ नहीं है। हिन्दोस्तान में ऐसे बहुत से फकीर हैं जो पानी पर भी चल लेते हैं। हवा में उड़ते हैं। उसने भी ऐसी ही महारत हासिल की हैं।" अहमद ने मुश्ताक की बात में अपनी बात जोड़ दी थी।

"अरे जनाब! तुम ठीक कहते हो। उस दिन अब्दुल्ला ने मुझको बताया था कि उसने उस शैतान को खुद अपनी आखों से उड़ते देखा था। तूफान की रफ्तार से वह उड़ा था। दोस्त! इन भूत-परेतों से लड़ना तो अपनी मौत को ही बुलाना है। जी है तो जहान है। बेचारा बदनसीब अब्दुल्ला! बेमौत मारा गया। अल्लाह उसको जन्नत बख्शें!" मकबूल ने अपने मन में समाये भय को इस प्रकार व्यक्त किया था।

यही कोई बीस पच्चीस मुसलमान सिपाही पेड़ों की छाँव में बैठे थे। आपस में गप्पें मार रहे थे। अपने सेनापति बहलोल खाँ के आदेशों की अवज्ञा

करके वे सभी छावनी छोड़ कर भाग निकले थे। यहाँ पर आकर ही दम लिया था। बहलोल खाँ ने मैदान छोड़कर भागती हुई अपनी फौज को बहुत ही रोकने का प्रयत्न किया था। परिणाम कुछ भी न निकला था। सहस्रों लोग इधर-उधर भाग गये थे। भूली भटकी हुई भगोड़ों की यह टुकड़ी इधर को आ निकली थी।

मुगलों में छत्रसाल का ऐसा आतंक छाया हुआ था कि लोग उनसे लड़ने से ही कतराने लगे थे। तहव्वर खाँ जब पकड़कर बंदी बनाया गया था तभी से यह धारणा बन गई थी कि जो भी शत्रु उसके सामने जाता है, वह जिन्दा वापस नहीं लौट पाता। शत्रुओं पर अचानक छत्रसाल हमला कर देते हैं और कुछ समय पश्चात् ही वे ३०-४० मील दूर पर जा धमकते। मुगलों को सावधान होने का अवसर ही नहीं मिल पाता है। बार-बार की पराजय ने मुसलमानों का मनोबल तोड़ दिया था। जब भी किसी को उसका सामना करने का काम सौंपा जाता वह कोई न कोई बहाना बनाकर बचने का प्रयत्न करता। बाध्य होकर लाचारी में ही लड़ते। अपने भाग्य को कोसते। ये भगोड़े सैनिक उसी श्रेणी के थे।

औरंगजेब की सेना में यह अफवाह बड़ी तेजी से फैल गई थी कि छत्रसाल कोई गैबी आदमी है। उससे पार पाना बड़ा कठिन है। दिल्ली सुल्तान ने बुंदेलखंड को काबू में लाने को एड़ी चोटी की ताकत लगा दी थी। असफलता ही उसके पल्ले पड़ी थी। वह बड़ा बेबस और परेशान हो गया था। इस्लामी झंडों का स्थान अब भगवा ने ले लिया था। छत्रसाल ने अपना स्वतंत्र राज्य प्रस्थापित कर लिया था। पन्ना उनकी राजधानी थी। यहाँ पर खुदाई में उनको असंख्य हीरे और जवाहरात मिले थे। अब धन की कमी तो उनको रह नहीं गयी थी। मुगलों की लूट मार पर वे अवलम्बित नहीं रह गये थे। स्वयं में आत्मनिर्भर थे। उनके पास मुगलों से टक्कर देने को उनके ही समकक्ष एक बड़ी सुसज्ज सेना भी खड़ी हो गई थी।

इसके पूर्व तो उन्होंने मुगलों का न जाने कितना खजाना लूटा था? दक्षिण से दिल्ली की ओर बादशाही खजाना कब चलता है? किधर से जाता है? अपने गुप्तचरों द्वारा उनको नियमित समाचार मिलता रहता था। वे घात लगा कर उसको लूट लेते थे। धन तो चलता मुगलों के खजाने की ओर पर

पहुँच जाता छत्रसाल के कोषागार में।

औरंगजेब ने अपने जितने भी सरदारों व फौजदारों को उन पर आक्रमण करने को भेजा था, शायद ही ऐसा कोई हो जो पराजित न हुआ हो। उलट वह बंदी बना लिया जाता था। सभी के मन में ऐसी दहशत छा गई थी कि लोग यह समझने लगे थे कि अवश्य ही वह कोई सिद्ध पुरुष हैं?

औरंगजेब का एक अति विश्वस्त सिपहसालार था। उसका नाम था सदरुद्दीन! उसको पन्ना पर आक्रमण करने को भेजा गया था। औरंगजेब को पूरा विश्वास था कि यह अवश्य ही कुछ करिश्मा दिखा कर लौटेगा।

वह सदा दिल्ली सुल्तान के सामने डींग हांकता रहता था, "हुजूर! जहाँपनाह! जिल्ले सुभानी! बस मुझे हुकुम फरमा दें। मैं गया नहीं कि उस शैतान को आपके कदमों लाकर खड़ा कर दूँगा?

उस बेचारे को क्या पता था कि औरंगजेब उसके ही गले में बिल्ली का घंटा बाँधने का आदेश दे देगा। मरता क्या न करता? बाध्य होकर उसको पन्ना जाना पड़ा था। वह अपनी सेना सजा कर चल पड़ा था। सदरुद्दीन पन्ना तक पहुँच भी नहीं पाया था कि छत्रसाल ने यकायक उस पर हमला कर दिया। मुगल सेनापति बड़ा अचम्भित था कि मीलों लम्बा सफर तय करके बुंदेला इतनी शीघ्रता से वहाँ तक कैसे आ पहुँचा था? उसको यह असम्भव ही प्रतीत हुआ था।

छत्रसाल के सेनानायक राममणि दौवा ने मुगल सेना के अगले भाग पर भयानक आक्रमण कर दिया था चार दिनों तक निरन्तर घमासान युद्ध चलता रहा था। अभी तक की लड़ाइयों में यह सबसे बड़ी थी। नारायण दास, अजीतराय, बालकृष्ण और गंगा चौबे आदि अनेकों बुंदेले सरदारों की मार से शाही सेना त्रस्त हो गई थी। छत्रसाल का जब सामान्य दलपति इतना चतुर और वीर हो सकता है तब तो उसका राजा कैसा होगा? इस आशंका ने उनके मन को निराशा से भर दिया। अंत में औरों की तरह इस शाही फौज के पैर उखड़ गये।

छत्रसाल ने ऐसी व्यूह रचना की थी कि अधिकांश मुगल सैनिक खेत रहे थे। सिपहसालार सदरुद्दीन भी पूरी तरह से घिर गया था। उसको बच निकलने का कोई रास्ता न बचा था। अन्ततः मजबूर होकर अपनी बची खुची

सेना के साथ उसको आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। उसकी रही - सही धाक भी जाती रही थी। उसको बंदी बना लिया गया। छत्रसाल यदि चाहते तो उसको मृत्युदंड दे सकते थे किन्तु उसको उन्होंने बंधक बना कर रखा था।

वह, औरंगजेब की नाक का बाल था। उसको बंदी बनाये जाने का शत्रुओं पर अच्छा परिणाम हुआ था। शाही फौज में यह आतंक बैठाने में सहायक सिद्ध हुआ था, यदि छत्रसाल उस ऐसी हस्ती को पकड़ सकते हैं तो अन्यों का क्या हाल बनेगा? उनके मनोबल को पूरी तरह से तोड़ने में घटना बड़ी कारगर साबित हुई थी। चौबे जी चले थे छब्बे बनने पर दुबे भी नहीं रहे।

उसने छत्रपति छत्रसाल के पैरों पर गिर कर, गिड़गिड़ा कर अपने प्राणों की भीख मांगी थी। बुंदेलाधिपति ने उससे लाखों रुपये हर्जाने के लिये थे। फिर न आने की कुरान की कसम खिलवाई थी। तब कहीं जाकर उसको छोड़ा था।

छत्रसाल ने मुस्कराकर उससे कहा था कि, ''सिपहसालार जाओ! अपने सभी फौजदारों, सरदारों और अपने आका से कह देना कि अब जमाना बदल गया है। बुंदेलखंड की ओर टेढ़ी निगाह से देखने का साहस न करें। यदि उन्होंने ऐसी गुस्ताखी की तो उनकी भी गति ऐसी ही बनेगी, जैसी तुम्हारी! मैं तुमको यह दिखाने के लिये ही मुक्त कर रहा हूँ! समझे!.... अगर तुम फिर आये तो याद रखना यहाँ से जिंदा वापस न जा सकोगे।'' वह बेचारा काँप कर रह गया था।

मुगल बादशाह ने सदरूद्दीन को पुनः भेजने को बड़ा उत्साहित किया किन्तु वह टस से मस न हुआ। औरंगजेब उससे कुपित भी हो गया था। उसकी तो नाक ही कट गयी थी। इस पराजय को वह भुला नहीं पा रहा था। अब यह काम उसने कोटरा के शासक लतीफ खाँ को सौंपा। वह, उसका अति निकट का संबंधी था। लतीफ खाँ भी पराजित हुआ। उसको भी बंदी बना लिया गया था।'

छत्रसाल ने विजयश्री प्राप्त करने के लिये उसको मोहरा बनाया था। मुगलसेना ने क्षुब्ध होकर अपनी तोपों का मुंह पन्ना की ओर मोड़ दिया। जब भी वे गोले दागने को तैयार होते, लतीफ खाँ को सामने खड़ा पाते।

सिपहसालार को देखकर मुगल तोपची हकबका जाते। किंकर्त्तव्यविमूढ़ से रह जाते। क्या करें? उनको कुछ समझ में न आता। यदि वे तोपों को दागते तो उसके फौजदार और औरंग के रिश्तेदार के चिथड़े-चिथड़े उड़ जाते। यदि नहीं तो बुंदेलों की गति को रोक पाना उनके लिये कठिन हो जाता। शत्रुओं की तोपें ठंडी पड़ गई थीं। इस परिस्थिति का छत्रसाल ने भरपूर लाभ उठाया। मुगल पूर्णतः पराजित हुए।

सिरौंज का हाकिम हाशिमखाँ, फौजदार खालिक खां, सय्यद बहादुर और रूहिल्ला खां ऐसे बड़े - बड़े सरदार भी अपने भाग्य को अजमाने को छत्रसाल के विरूद्ध हो गए थे। सभी क्रमशः पराजित हुए थे। यही नहीं वे सभी भी बंदी बनाये गये थे। पता नहीं छत्रसाल को क्या जादू आता था कि जो भी मुगल सेनापति उनके पास गया वह बंदी ही बना लिया गया। इन सभी फौजदारों की भी वैसी ही दुर्गति बनी थी जैसी तहव्वर खां, सदरूद्दीन और लतीफ खां की हुई थी।

देश और धर्म के प्रति श्रद्धा जनमानस में तो थी ही उनमें केवल अभाव था साहस और आत्म विश्वास का। छत्रसाल तथा स्वामी प्राणनाथ प्रभु के नेतृत्व में पूरा समाज संगठित होकर खड़ा हो गया था। सैन्य बल और जागृत समाज का अद्भुत योग व संगम बना था। विजय पर विजय ने हिन्दुओं में नवआशा और स्वतंत्रता की आकांक्षा को प्रबल बनाया था। 'मुसलमानों को कोई परास्त ही नहीं कर सकता, उनमें व्याप्त यह अंध विश्वास तिरोहित हो चुका था।

सैकड़ों राजे - रजवाड़े छत्रसाल के झंडे के तले आ गये थे। यहां तक कि रतनशाह और अंगद ऐसे लोगों ने भी उनका साथ देना प्रारम्भ कर दिया था। पहले यही लोग उनकी खिल्ली उड़ाते नहीं थकते थे। चढ़ते सूरज को सभी प्रणाम करते हैं। शत्रुओं और मित्रों की यह धारणा पक्की बन गई थी कि छत्रसाल अवतारी पुरूष हैं। अपराजेय हैं। विख्यात मुगल सेनापति की, शेख अनवर की, गिरफ्तारी ने तो रही - सही कसर को भी पूरा कर दिया था।'

अब तो स्थिति ऐसी बन गयी थी कि जिस भी मुगल सेनापति को छत्रसाल के विरूद्ध भेजे जाने का प्रस्ताव आता तो उसको सुनते ही उस पर

तो जैसे गाज़ ही गिर पड़ती। उसका चेहरा देखने लायक बन जाता। वह तरह - तरह के बहाने खोजने लगता। अपनी बला को औरों पर डालने का प्रयत्न करता। यदि मजबूरी में जाना ही पड़ता तो उसको आत्मसमर्पण करने में देर न लगती। वे जानबूझकर ऐसा करते हों तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि छत्रसाल बड़ा हर्जाना लेकर उसको छोड़ देते। यदि दुबारा आता तो जिन्दा भी नहीं छोड़ते। उन बेचारों को भले ही विपुल धन देना पड़ता रहा हो पर जान तो बच जाती। औरंगजेब की भी वे बात रख लेते। अल्लाह की खैर मनाते. . . . अपनी तकदीर को सराहते। नहीं तो मौत के जबड़े में जाकर कौन लौट पाता?

औरंगजेब ने एक बार पुनः अपनी पूरी शक्ति झोंक दी थी। उसने दक्षिण में लगी अपनी सेनाओं का मुख भी बुन्देलखण्ड की ओर मोड़ दिया। ग्वालियर के सूबेदार अमानुल्ला खां और इलाहाबाद के सूबेदार हिम्मत खां तथा इन्दरवी के जागीरदार पहाड़ सिंह गौड़ को उसने इस अभियान का नेतृत्व सौंपा था। एक बहुत बड़ी मुगल सेना राजधानी पन्ना को ध्वस्त करने को चल पड़ी थी। औरंगजेब ने इस बार निर्णायक युद्ध का निश्चय कर लिया था। सदा - सदा के लिए अन्तिम जय या पराजय का उसने मन बनाया था। मुगल बादशाह की नजरों में पन्ना के हीरे जवाहरात की खाने भी चढ़ गई थीं।

इस बार तो शत्रुओं की सम्मिलित सेना को परास्त करना सचमुच में टेढ़ी खीर थी। बड़ा विकट प्रश्न था। यदि छत्रसाल पराजित हो जाते तो उनकी अपराजेयता की साख, विजेता की छवि धूमिल पड़ जाती। हिन्दुओं के आत्म विश्वास को झटका लगता। मुसलमानों के हौसले बुलंद हो जाते। उन्होंने चतुराई और बुद्धिमत्ता से काम लिया। उन्होंने अपनी शक्ति को व्यर्थ में गंवाना उचित नहीं समझा था। लम्बी छलांग लगाने के लिए दो कदम पीछे हटना पड़ता ही है। उन्होंने यह झूठा प्रचार करवा दिया था कि छत्रसाल मुगलों की विशाल सेना के आगमन के समाचार को सुन कर सचमुच में डर गये हैं। बादशाह से वे संधि करने को लालायित हैं।

छत्रसाल ने शाही सेना के कुछ वरिष्ठ अधिकारियों और सरदारों को अपनी ओर फोड़ लिया था। वे बेचारे तो वैसे भी लड़ने से कतराते थे। अपनी किरकिरी नहीं करना चाहते थे। औरंगजेब के मस्तिष्क में उन्होंने यह

बात अच्छी प्रकार से बैठा दी कि यदि इस बार भी पराजित हुए तो फिर स्थिति सम्हाले नहीं सम्हलेगी। सभी सल्तनत के विरूद्ध एकजुट हो खड़े हो जायेंगे। छत्रसाल से सुलह कर लेना ही उचित है।

. . . फिर संधि का प्रस्ताव तो स्वयं छत्रसाल की ओर से ही आया है। इसमें हमारी हेठी तो है नहीं। अपने कतिपय सेनानायकों की सलाह पर उसने संधि की शर्तें ज्यों की त्यों स्वीकार कर लीं। यह सब छत्रसाल की सोची - समझी चाल का अंग था। औरंगजेब ने सोचा था कि यदि इधर युद्ध से छुट्टी मिल गई तो वह मराठों के विरूद्ध चलाये जा रहे आक्रमण पर पूरी शक्ति झोंक देगा। अपना पूरा ध्यान उस ओर केन्द्रित कर सकेगा। अतः उसने छत्रपति से अपने अच्छे संबंध बनाने में ही अपना हित समझा।

दोनों सेनाओं के बीच में अजमेर में युद्ध वर्जन की संधि हो गई। मुसलमान सैनिकों की जान में जान आई। उनका सिरदर्द दूर हो गया। जान बची लाखों पाये, लौट के बुद्धू घर को आये। शाही सेना के बढ़ते हुए कदम थम गये। वह वापस लौट पड़ी। सबने राहत की सांस ली। यह छत्रसाल की कूटनीतिक विजय थी।

मुगल सल्तनत की फौजों के लौटते ही छत्रसाल ने मुगल अधिकृत अन्य प्रदेशों पर आक्रमण करना फिर शुरू कर दिया। वे तीव्र गति से आगे बढ़ने लगे। उनके थानों को हस्तगत करने लगे। बुंदेलों ऐसी फुर्ती मुगलों में न थी। जिस दूरी को बुंदेली सेना कुछ दिन में तय करती उसको तय करने में मुगलों को महीनों लगते। बादशाह, सिरौंज और नरवर के फौजदारों - रणदुल्ला खां व हिफाजुल्ला खां को बुंदेलों की गतिविधियों पर नजर रखने को छोड़ा गया था। छत्रसाल ने उन पर अचानक आक्रमण कर दिया। वे अपनी जान बचाकर भाग गये थे।

अपनी पराजय को छिपाने के लिए वे चुप्पी साधे रहे। दिल्ली को बराबर यही समाचार भेजते रहे थे कि यहां पर सब ठीक - ठाक है। छत्रसाल काबू में हैं। सेना भेजने की कोई जरूरत नहीं है। दिल्ली के अपने आकाओं को उन्होंने भुलावे में रखा था। उनकी छत्रसाल से अन्दरूनी सांठ - गांठ थी। औरंगजेब को जब इस बात का पता चला तब तक बहुत देरी हो चुकी थी। बुंदेलों की पकड़ बहुत मजबूत हो चुकी थी।

बादशाह अपने सैनिकों और सिपहसालारों पर बड़ा क्रुद्ध हो गया। बड़ा चिन्तित हो गया। चिड़चिड़ा भी। उसके मन में सबके प्रति अविश्वास का भाव उत्पन्न हो गया था। इसी झोंक में उसने कइयों को दण्डित भी कर डाला था। बड़ा असन्तोष फैल गया था। किस पर भरोसा करें. . किस पर न करें? उसको बुद्धि भ्रम हो गया। उसको सभी अपने दुश्मन ही दीखने लगे थे।

उसकी दृष्टि अपने खास सिपहसालार बहलोल खां पर गई थी। उसको वही भरोसे का दीखा था। बहलोल खां ने पन्ना पर आक्रमण करने का बीड़ा उठाया था। उसने अपनी रणनीति बदल दी थी। बिना किसी शोर - शराबे के वह अपनी सेना ले पन्ना में घुस जाना चाहता था। फौज को कई टुकड़ियों में उसने बांटा था। सभी सैनिक अस्त्रों शस्त्रों से तो सज्जित थे, पर शरीर पर नागरिक वेश धारण कर रखा था। वे आगे बढ़ रहे हैं, इसका किसी को अन्दाज न हो सके। यही उनकी नियत थी। किसी को कानों - कान खबर तक न हो, इसकी पूरी सावधानी उसने बरती थी।

छत्रसाल उस समय पन्ना से काफी दूरी पर थे। इसका उसने अपने जासूसों से पहले ही पता लगवा लिया था। उनकी अनुपस्थिति का वह लाभ उठाना चाहता था। अपनी योजना को उसने इतनी कुशलता से क्रियान्वित किया था कि सचमुच में छत्रसाल को जरा सा भी आभास न हो सका था।

बहलोल खां अपनी सेना के साथ पन्ना के अति निकट तक बिना किसी बाधा के पहुंच गया था। केवल आठ मील की दूरी ही रह गयी थी। यह संयोग ही था कि राजगढ़ के किलेदार को इसकी भनक लग गयी। उसके तो होश ही उड़ गये। किले में सेना भी अपर्याप्त थी . . . फिर भी उसने आगे बढ़ कर शत्रु को रोका। वह बहलोल खां को वहीं उलझाये रखना चाहता था। उसे एक युक्ति सूझ गई थी। छत्रसाल की सूरत शकल से मिलते जुलते एक सैनिक को उसने सेनापति के रूप में खड़ा कर दिया था। पीछे से स्वयं नेतृत्व की बागडोर सम्हाले हुए था। इस आकस्मिक संकट की सूचना देने, उसने एक द्रुतगामी घुड़सवार को छत्रसाल के पास पहले ही भेज दिया था।

मुसलमान छत्रसाल को देख कर भौचक्के रह गये। वे घबरा उठे। ". . . या . . .खुदा . . .बड़े ताज्जुब की. . . बात है. . . .यह शैतान तो

यहां था ही नहीं . . . .कहां से. . . आ गया . . . ? क्या आसमान से टपका. . . .है?''

जासूसों ने जबकि पक्की सूचना दी थी कि वह यहां से लगभग सौ मील की दूरी पर है। फिर ऐसा कैसे हो सकता है? बहलोल खां ने अपने जासूसों को खूब खरी - खोटी सुनाई। मुसलमान सैनिक बिगड़ उठे थे। उनको धोखा देकर लाया गया है। जानबूझ कर फंसाया गया है। उनके हौसले ठंडे पड़ गये थे। राजगढ़ के किलेदार ने छद्मवेशी छत्रसाल की ओट में मुगलों पर जो कहर ढहाया, उससे मुगलों में हाय - हाय मच गई। भगदड़ का माहौल गरम हो गया। भयंकर मार काट मचा कर किलेदार अपने किले में जा घुसा था।

अब बहलोल खां पन्ना को तो भूल गया। राजगढ़ को जा घेरा। पहाड़ी के पीछे की ओर वाले मैदान में उसका पड़ाव पड़ा था बहलोल खां की अपार क्षति होने के बाद भी छत्रसाल को पकड़ लेने की उमंग ने उसको किले को घेर लेने को प्रेरित कर दिया था।

उसका भ्रम तो तब टूटा जब असली छत्रसाल ने पीछे से उस पर आक्रमण कर दिया। वे किले के बाहर थे बहलोल की छावनी को घेर लिया। किले के अन्दर छत्रसाल और बाहर भी छत्रसाल या . . . . खुदा . . .यह क्या माजरा है? वह तथा उसकी पूरी सेना दिग्भ्रमित हो गई थी। वास्तव में छत्रसाल समाचार पाते ही राजगढ़ की ओर चल दिये थे। दिन रात यात्रा कर किलेदार की सहायता के लिए आ पहुँचे थे। मुगल फौज सांसत में पड़ गयी थी। चक्की के दो पाटों में वह फंसी थी। किले के अन्दर से और बाहर से उन पर मार पड़ रही थी। शाही सेना का बुरी तरह से संहार हो रहा था।

बहलोल खां को बुन्देलों ने घेर लिया। वह बुरी तरह से घायल हो गया था। उसका महावत अपने प्राण बचाने के लिए उसको अधर में ही छोड़ कर भाग निकला था। वह बेचारा औरंग का चहेता सिपहसालार बहलोल दिल्ली तक न पहुंच सका। यम लोक सिधार गया। उसके मरते ही बचे खुचे मुगल सिर पर पैर रखकर भाग निकले थे। सारी सेना छिन्न - भिन्न हो चुकी थी।

भगोड़े सैनिकों की यह टुकड़ी वहीं से भाग कर यहां आ लगी थी। वे बड़ी निश्चिंतता से विश्राम करते - करते इधर - उधर की गप्पे हांक रहे थे।

. . . सहसा उनको पत्तों की चुरमुराहट और झाड़ियों में पौधों और टहनियों के चटखने की आवाज सुनाई दी।

"छत्ता . . .आया . . .आया. . .बचाओ. . . बचाओ. . ." उनमें से एक जोर से चिल्ला पड़ा। छत्रसाल के विजयी अभियानों से वे इतने भयभीत थे कि उनको सभी ओर छत्रसाल ही दीखने लगे थे। विजय और छत्रसाल एक दूसरे के पर्याय बन गये थे। सभी भगोड़े चीखते - चिल्लाते गिरते पड़ते जिसकी जिधर सींग समाई पुनः भाग निकले। किसी ने पीछे घूम कर भी न देखा, कुछ सियार झाड़ी में से निकल भागे थे।

— * —

भले भाई!

उसका नाम था, भले भाई। आयु भी उसकी यही कोई १५ - १६ बरस की। छत्रसाल का वह अनन्य भक्त और साथी था। सदा उनके साथ छाया के समान रहता। सुख - दुख में। युद्ध भूमि में तलवारों की खनखनाहटों, तोपों की गड़गड़ाहटों के बीच और सामान्य दिनों में भी। छत्रसाल उससे बहुत स्नेह करते। अपने किसी सगे से कम नहीं। यदि उसको जरा भी कष्ट हो जाता तो उनका हृदय दुख से व्यथित हो उठता। उसकी जब मृत्यु हुई थी तो उनकी आंखें आंसुओं से छलछला उठीं थीं। पुत्र के शोक में भी वे नहीं रोये थे।

छत्रसाल से वह भी बहुत प्यार करता। कई बार तो उसने अपने प्राण पर खेलकर भी उनके जीवन की रक्षा की थी। स्वामी के मस्तक की ओर बढ़ते शत्रु के प्रहार को उसने अपनी छाती पर झेला था। एक बार नहीं अनेकों बार उनको घायलावस्था में वह रणभूमि से लेकर निकल भाग था। सुरक्षित स्थान पर पहुंचाया था। आप जानने को उत्सुक होंगे कि आखिर ऐसा सौभाग्यशाली प्राणी था, कौन? वह था उनका प्रिय अश्व! एक पशु!

मनुष्य और पशु दोनों में हृदय की संवेदनशीलता होती है। जानवर में सीमित, मनुष्य में असीमित। मानव में तो उसको बढ़ाने और विकसित करने की क्षमता अधिक होती है। इसीलिए तो मनुष्य, मानवत्व से ईश्वरत्व तक पहुंच जाता है। पशु तो पशु ही रह जाता है। उसमें मनुष्य ऐसा विवेक और मस्तिष्क नहीं होता।

मां शिशु को स्नेह से पालती - पोसती है। स्वयं भूखों रह कर भी उसका पेट भरती है। खुद गीले में सोती उसको सूखे में सुलाती है। क्यों?

आत्मीयता और हृदय की संवेदनशीलता ही तो है। पशु भी अपने बच्चों से स्नेह करता है।. . . किन्तु कब तक? जब तक वह अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो जाता। वह खड़ा हुआ नहीं कि वह सब भूल जाता है। अपने में ही आत्मकेन्द्रित हो जाता है। यह उसका सहज स्वभाव है। कदाचित् इसीलिए पशु कहा गया। उनका यह घोड़ा इससे कुछ भिन्न था।

मनुष्य से बढ़कर पशु में एक विशेषता अधिक होती है उसका बच्चा तो जन्मते ही अपने पैरों पर खड़ा होने लगता है। गाय के बछड़े को ही देखें। वह पैदा होते ही एक दो घंटे में ही उछलने - कूदने दौड़ने लगता है। स्वावलम्बी बन जाता है। मानव शिशु को तो रेंगने में ही दो तीन साल लग जाते हैं। स्वावलम्बी बनने में तो बरसों।

प्राकृतिक और दैवी आपदाओं का आभास मनुष्यों की अपेक्षा पशुओं को पहले होता है। वे अपने कष्टों को वाणी में व्यक्त नहीं कर पाते, शायद इसीलिए भगवान ने उनको पूर्वाभास की अधिक शक्ति प्रदान की है। उनके यहां सामंजस्य और संतुलन है।

सर्वप्रथम जलप्लावन की सूचना भगवान मनु को अपने प्रिय मत्स्य ही से प्राप्त हुई थी। उस संवेदनशील प्राणी ने अपने रक्षक और पालक को आसन्न संकट से उबारा था। बरसात के आगमन की पूर्व सूचना मेंढक देता है। टर्र. . .टर्र. . . .टर्र. . . की गुहार करता हुआ वह उसके अगवानी की प्रतीक्षा करता है। भूकम्प आने से पहले पशु - पक्षी अपने - अपने नीड़ों आश्रयस्थलों से बाहर निकल कर सुरक्षित स्थानों की ओर भागने लगते हैं। मनुष्य को इसका आभास नहीं हो पाता। यदि यंत्र न बतायें तो. . .।

एक दिन की बात है। किसी युद्ध में छत्रसाल घायल हो गये थे। वे घोडे की पीठ पर सवार थे। उनका अधिकांश समय तो शत्रुओं से लड़ने में ही बीता था। जख्मी हो जाना उनके लिए एक सामान्य सी बात थी। लेकिन इस बार तलवार का वार गहरा था। शरीर से बहुत रक्त बह चुका था। आंखों के सामने अंधेरा छाने लगा था।

छत्रसाल ने अश्व को पुचकारा, "बेटे अब तो तू ही रक्षक है। इस समय तो और कोई संगी साथी नहीं। बस - तू ही सहारा है . . .। शरीर अशक्त हो चला है। हाथ से लगाम छूट रही है।" पैर को उसके पेट पर

उड़ा कर उन्होंने उसको संकेत दिया था।

फिर क्या हुआ...? उनको कुछ भी पता नहीं। वे मूर्छित हो गये थे।

वह था तो घोड़ा ही. . . . पर उसने अन्य पशुओं से कहीं अधिक विवेक और संवेदनशीलता पाई थी। यह उसके पूर्व जन्म का सुफल ही रहा होगा। क्या कहा जाये? उस मूक प्राणी ने उनकी भाषा को समझा था या नहीं लेकिन उसको आसन्न संकट का तुरन्त अहसास हो गया था। परिस्थिति की गंभीरता को वह आंक गया था। स्वामी के बिना तो उसका जीवन ही व्यर्थ है। अपने पिछले जीवन के पापों को धो डालने का आज ही तो उसको सौभाग्य प्राप्त,हुआ है। स्वामी का ऋण इस संकट के क्षण में नहीं चुकायेगा तो कब? उसके मन में यह श्रेष्ठ भाव जागा होगा तो कोई आश्चर्य नहीं। उसके पास यदि वाणी की शक्ति होती तो वह कदाचित् उसको व्यक्त भी कर देता।

"हिन. . .हिना. . . कर. . . " मित्रों को पुकारने की शक्ति तो उसमें थी। . . .किन्तु शत्रुओं का ध्यान उस ओर चले जाने का भय था। उसने इधर - उधर दृष्टि दौड़ाई। एक स्थान पर उसको निरापद मार्ग दीखा। वह स्वामी को लेकर बेतहाशा भागा। बुंदेलों की छावनी की ओर उड़ चला। वह पशु छत्रसाल को वहीं पर फेंककर अपने प्राण बचाने को युद्धभूमि से भाग सकता था, पर स्वामिभक्त प्राणी ने अपने पालक पर प्राण निछावर करने की ठान ली थी।

बुंदेलों की छावनी में ही जाकर वह रूकता। किन्तु मूर्छित छत्रसाल उसकी पीठ से धरती पर गिर पड़े थे। यह भी संयोग ही था कि वे बुंदेलों की छावनी के समीप ही गिरे थे। अति सुरक्षित स्थान पर पहुंच कर उसने जाकर दम लिया था।

वह महाराणा प्रताप के चेतक से कम न था। इस समय तो उसकी वही भूमिका थी जैसे चेतक ने सलीम के मदमत्त हाथी के मस्तक को अपने टापों की मार से उसको लहूलुहान और बेहाल कर दिया था। वह प्राण बचाकर भाग निकला था। महावत के रोकने पर भी नहीं रूका था। उसने भी टापों का प्रहार, मुंह से शत्रु की खोपड़ी को पकड़ कर पीस डालना और दुलत्ती चलाकर शत्रु के होश ठिकाने लगा देना, उनको सदा के लिए ठंडा कर

देना आदि गुण उसने भी महाराज छत्रसाल से ही सीखे थे।

स्वामी की रक्षा हेतु वह चौकसी देने लगा। जो भी हिंसक पशु जीभ लपलपाता, उनके गरम रक्त को और मांस का रसास्वादन करने को आता, उसको वह मार भगाता। वह किसी को स्वामी के पास तक फटकने भी न देता। स्वयं पहरा देता हुआ हिनहिना कर मित्रों को सहायता के लिए बुला रहा था।

छावनी में छत्रसाल को न पाकर बुंदेलों को बड़ी चिन्ता हो गई थी। उनकी खोज में वे निकल पड़े थे। लोग चारों ओर दौड़ाये गये थे। एक स्थान पर उनका अश्व खड़ा दीखा। उनमें कुछ आशा बंधी। उसकी हिनहिनाहट को सुनकर वे वहां तक पहुंचे थे। मित्रों को पहचानने में उसको देर न लगी। वे लोग जब दौड़े - दौड़े घोड़े के पास पहुंचे तो बेहोश छत्रसाल को पाया। उनके तो काटो तो खून न रहा।

उन्होंने छत्रसाल को उठाया मूर्छितावस्था में ही उसी की पीठ पर लाद कर किले में लाये। उनको स्वस्थ होने में काफी समय लग गया था। एक प्रकार से मरणासन्न ही वे हो गये थे। बड़ी सावधानीपूर्वक उनकी चिकित्सा करनी पड़ी थी। जब तक छत्रसाल ठीक नहीं हुए, उस पशु के नेत्रों से अविरल आंसू ही टपकते रहे थे। शायद वह ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि उसके प्राण लेकर स्वामी को वापस कर दें। उसकी प्रार्थना या कुछ और . . . जो भी हो. . . . वे स्वस्थ हो गये।

उन्होंने स्नेह से जब उसकी पीठ पर हाथ थपथपाया था तभी उसकी जान में जान आयी थी। वह प्रसन्नता से नाच उठा था। शायद पहली बार ही वह ऐसा नाचा हो। उसकी पुरानी तेजी पुनः वापस लौटी। एक समारोह का आयोजन हुआ। छत्रसाल ने उसको सम्मानित किया था।

उन्होंने उसको 'भले भाई' कह कर पुकारा था। इतिहास में वह "भले भाई!" के नाम से ही विख्यात हो गया। छत्रसाल का स्मरण आते ही. . बरबस उसका नाम भी जीभ पर आता है। 'भले भाई' भी इतिहास के स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गये। चिरस्मरणीय बन गये।. . . नहीं तो. . .कौन किसको . . याद रखता है?

— * —

मत समझो! कि हिन्दुस्थान की तलवार सोई है

सारे बुन्देलखण्ड में हिन्दुओं का वर्चस्व प्रस्थापित हुए कई वर्ष व्यतीत हो चुके थे। मुगलों की दासता से उसको मुक्ति मिल गई थी। हिन्दवी स्वराज्य का एक-छत्र राज्य था। छत्रसाल ने अब विशेष रूप से शासन व्यवस्था को अधिक चुस्त और प्रभावी बनाने की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया था। यद्यपि उनको निरन्तर विजय मिलती रही थी पर जन - धन की हानि भी कम नहीं हुई थी। कुछ काल के लिए वे युद्ध से बचना चाहते थे। क्योंकि व्यवस्थाएं तो शान्ति काल में ही खड़ी होती हैं। अनेकों युद्धों में दिल्ली की विदेशी सल्तनत भी त्रस्त और जर्जर हो गयी थी। मुगल सत्ता का अस्तित्व ही दांव पर लग गया था।

औरंगजेब ने छत्रसाल के सामने घुटने टेक दिये थे। उसने उनकी स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार कर लिया था। दक्षिण में मराठों और पंजाब में सिखों ने तो उसकी नाक में और भी दम कर दिया था। बीजापुर और गोलकुंडा की मुस्लिम रियासतों ने भी उसके विरूद्ध बगावत का झंडा बुलन्द कर दिया था। बुन्देलखण्ड में मुसलमानों के अत्याचार बंद हो गये थे। अब उनसे छेड़छाड़ करने की मुगलों की हिम्मत नहीं होती। औरंगजेब के व्यवहार में भी नरमी और मित्रता का रूख झलकता दीखने लगा था। छत्रसाल से स्थाई संधि कर लेने को वह लालायित दीखा।

कभी - कभी धुरंधर राजनीतिज्ञ भी अपने ही चाल के आखेट बन जाते हैं। गच्चा खा जाते हैं। आखिर इस बार छत्रसाल भी मात खा ही गये। वे

सोचने लगे थे कि पराजयों ने औरंग को सबक सिखा दिया है। सचमुच में उसके हृदय का परिवर्तन हो गया है।

कुत्ते की दुम कभी सीधी नहीं होती। वह अपने सहज स्वभाव को नहीं छोड़ता। शक्ति को देख कर ही वह दबता है। छत्रसाल ऐसा चतुर, दूरदर्शी योद्धा भी मुसलमानों की इस स्वाभाविक मानसिकता व प्रवृत्ति को समझने में भूल कर बैठा। औरंगजेब किसी प्रकार से छत्रसाल को बुन्देलखण्ड से दूर ले जाना चाहता था। इसमें ही उसका लाभ था। उनके वहां रहते हुए बुन्देलखंड में घुसपैठ करना उसे असम्भव लगने लगा था। उसने संधि का प्रस्ताव किया। उसकी पहल केवल नाटक मात्र थी। पूरी कुटिलता से भरा हुआ पग था।

. . . . .और एक दिन। औरंगजेब का उनको संदेश मिला, ''महाराज छत्रसाल। बुन्देलाधिपति! मैंने बुन्देलखण्ड में आपके आधिपत्य को दिल से स्वीकार कर लिया है। रोज - रोज की लड़ाई में दोनों को हानि होती है। अब बखेड़ा खत्म करो। अपनी में आप और मैं अपनी में सीमित रहूं। मैं आपसे सुलह चाहता हूं। आप की सभी शर्तें मुझे स्वीकार हैं। बीजापुर और गोलकुंडा को दबाने में आप मेरी मदद करें। गुजारिश है।''

छत्रसाल को लगा कि मुगलों की सहायता से ही सही, दक्षिण के दोनों शक्तिशाली मुसलमान शासकों को लगे हाथों ही निपटा लिया जाये। अतः औरंगजेब की प्रार्थना को स्वीकार कर वे उन शत्रुओं से निपटने को दक्षिण की ओर प्रस्थान कर गये। वे बुन्देलखण्ड से लगभग एक सहस्र मील दूर पर पहुंच गये थे।

उन दिनों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैदल, पालकी, घोड़ों अथवा रथों पर ही आया - जाया जा सकता था। मार्ग भी वनैले हिंसक पशुओं से भरे और घने वनों से आच्छादित तथा ऊबड़ - खाबड़ थे। पग - पग पर खतरों का सामना करना पड़ता था। आज के समान द्रुतगामी साधन तो उपलब्ध थे नहीं। संपर्क सूत्रों को भी जोड़ना कठिन हो जाता था। फिर परायों के राज्य में तो और भी. . . .। छत्रसाल को बुंदेला धरती के समाचार उपलब्ध नहीं हो पा रहे थे। वे तो यही समझ रहे थे कि वहां सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा है। अपने पीछे वे सारी व्यवस्थाएं बना कर आये थे।

औरंगजेब की असली मंशा थी कि उनकी अनुपस्थिति का लाभ उठाया जाये। अंधे के हाथ में जैसे बटेर ही आ गयी थी। बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा था। उसने संधि को ताक पर रख दिया। बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई कर दी। मुगल फौजदार शमशेर खां अपनी सेना ले गढ़ कोटा पर चढ़ दौड़ा। उसने उसको घेर लिया। गढ़ कोटा, दमोह, धामौनी आदि सारे क्षेत्र बुन्देलों के हाथों में थे। वे सब अनाक्रमण की संधि के भ्रम में थे। अच्छी प्रकार से तैयार न थे। हमलावरों की संख्या अधिक थी। फिर भी बुन्देलों ने अपनी पूरी शक्ति से उनका प्रतिकार किया। अंत में उनको किला छोड़ देने को बाध्य ही होना पड़ा

इससे मुसलमान सैनिकों का उत्साह और भी बढ़ गया। अब वे कहां थमने वाले थे? उन्होंने कई ग्रामों को अपने अधिकार क्षेत्रों में ले लिया। वे छतरपुर की ओर बढ़े। इसको छत्रसाल ने बसाया था। उनके बचपन के नाम छत्ता पर ही किले का नामकरण हुआ था। नेतृत्व विहीन बुन्देले डट कर लड़े लेकिन पराजित हो गये। हिन्दवी स्वराज्य का कुछ भूभाग पुनः मुगलों के हाथों में चला गया।

ईश्वर की कृपा ही कहें। दक्षिण में छत्रसाल को मुगलों के आक्रमण का विस्तार से समाचार मिल गया। गढ़ कोटा और छतरपुर उनके कब्जे में चले गये हैं, इसकी भी उनको जानकारी मिल गयी थी। उनको समझने में देर न लगी कि यह सब औरंगजेब के षड्यंत्र का ही परिणाम है। यह मुगल सरदारों की कार्यवाही मात्र नहीं है। इसमें बादशाह की अवश्य मिलीभगत है। वह इन आक्रमणों से अपनी अनभिज्ञता ही प्रकट कर रहा था।

छत्रसाल ने अपनी चाल चली। उन्होंने यह प्रचार करवा दिया कि वे रामेश्वरम् धाम कीओर प्रस्थान कर गये हैं। . . . किन्तु चक्कर काट कर वे अपनी सेना के साथ तीव्र गति से बुन्देलखण्ड की ओर चल पड़े थे। मुगल यही सोचते रहे कि वे तो दक्षिण में ही हैं। लेकिन मुगलों के काल के रूप में वे उमड़ते - घुमड़ते उन पर झपट्टा मारने को तेजी से आगे बढ़ते ही जा रहे थे। मुगलों को इसकी खबर न थी।

एक और मुगल सरदार था शेर अफगन! उसने बुन्देलों के प्रमुख सैन्य

केन्द्र मऊ सहानियां पर धावा बोल दिया था। वह इस केन्द्र को सदा सर्वदा के लिए नष्ट कर डालना चाहता था। बुन्देलों की कमर तोड़ देना, उसका प्रमुख उद्देश्य था। उसने अपने सैनिकों के मन में यह बात बिठा दी थी कि "छत्रसाल यहां पर नहीं है। बस यही अवसर है। अल्लाह के बंदों। मऊ पर हल्ला बोल दो, तुमको जन्नत का शवाब मिलेगा।"

उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने छत्रसाल को अपनी सेना के साथ उसकी अगवानी करते पाया। उनको देखते ही उसके हाथ पैर फूल गये। शत्रु सैनिकों के हौसले पस्त हो गये। उसका इस्लाम का नशा काफूर हो गया। उसके सैनिकों में बहुत असन्तोष व्याप्त हो गया था। "शेर अफगन ने उनके साथ धोखा किया है। वह यहां पर हम सबको फिजूल मरवा देना चाहता है।" उसके सैनिकों ने विद्रोह कर दिया वे उसका साथ छोड़ कर भाग निकले। भागती हुई सेना की जैसी दुर्गति होनी चाहिए वैसी ही उनकी भी हुई।शेर अफगन पकड़ा गया। छत्रसाल ने उसको बंदी बना लिया था।

एक दूसरा फौजदार और था, कुलीन खां वह पन्ना पर आक्रमण करने की ताक में था। शेर अफगन के बंदी बनाये जाने का उसको समाचार मिला था। वह उसकी सहायता को दौड़ा। उसका पन्ना तक पहुंचना तो दूर रहा, छत्रसाल ने उसको मार्ग में ही धर दबोचा था। उसकी सेना में शोर मचा।

"छत्ता. . . आया. . . बुन्देला. . . आया. . . .आया. . ." यह आवाज एक छोर से दूसरे छोर तक गूंज गई। उसकी सेना की भी सांप - छंछूदर ऐसी गति बन गई थी। वह न तो पीछे लौट सकती थी और न ही आगे। आगे तो मौत बने खड़े थे छत्रसाल. . .और पीछे आ डटी थी गढ़कोटा और छतरपुर की उनकी बुन्देला सेना। इन किलों के किलेदार मुगल हाकिमों की सुरक्षा सेना पर टूट पड़े थे। इन दोनों दुर्गों को उन्होंने पुनः मुगलों के चंगुल से मुक्त करा लिया था। दोनों सेनाओं के बीच में पिस कर रह गई थी कुलीन खां की शाही सेना। भाग्य का मारा! बेचारा सरदार कुलीन खां भी घेर कर पकड़ लिया गया। शेर अफगन और कुलीन खां बंदीगृह की हवा खा रहे थे।

आगे बढ़ कर इसी दौर में छत्रसाल ने कालिंजर, विदिशा और उज्जैन तक सभी क्षेत्रों से मुगल सत्ता को उध्वस्त कर डाला था। सभी विजित प्रदेशों

तथा अन्यों पर भगवा झंडा फहरा उठा था। बहुत अनुनय - विनय के पश्चात ही छत्रसाल ने विपुल धन और चौथ वसूल करने के पश्चात ही उनको छोड़ा था।

यद्यपि शेर अफगान ने आगे कभी आक्रमण न करने की कुरान की कसमें खाईं थीं किन्तु पकड़े जाने का अपमान उसके हृदय को बिंधे डाल रहा था। उसने एक बार पुनः सिर उठाने का प्रयत्न किया था। इस बार तो छत्रसाल ने उसको सीधे यमलोक पठा दिया। वे इतने सहृदय थे कि उसके शव को उसके पुत्र के हाथों में सौंप दिया था।

छत्रसाल ने मुगल बादशाह के पास इस आशय का संदेशा भेजा था कि, ''औरंगजेब! अपनी हरकतों से बाज आओ! मैं अब बुन्देलखण्ड में आ गया हूं।यह समझने की भूल मत करो कि हिन्दुस्थान की तलवार सोई है। अपनी सेना और सिपहसालारों को व्यर्थ में मत मरवाओ। समझ लो! अब यदि कोई गुस्ताखी करेगा तो वह जिन्दा वापस न जा सकेगा। अब तुम्हारे दिन भी बीत गये हैं।''

छत्रसाल को इस समय 'शठे शाठ्यं समाचरेत'' की नीति अपनानी पड़ी थी। औरंगजेब ने अपना अन्तिम प्रयास किया। उसने अपने अति पराक्रमी सेनापति पुरदिल खां को एक विशाल सेना के साथ भेजा। छत्रसाल की तलवार ने कभी हार का मुख ही न देखा था। उन्होंने क्रोधावेश में पुरदिल खाँ के टुकड़े - टुकड़े कर डाले। इसके पश्चात तो मुगल बादशाह की बुन्देलों के विरूद्ध खड्ग उठाने की कभी हिम्मत न हुई। दक्षिण में ही अंत में १७०७ में औरंगजेब अपने मन की आस मन में लिए ही औरंगाबाद में दफन हो गया।

— * —

वीरागंना जैतकुँवरि

"कुंवरानी जी! कुँवररानी जूँ। युवराज अभी तक लौटे नहीं। सैनिकों ने अपनी आँखों से उनको वापस लौटते हुए देखा था।. . . . पता नहीं वे कहां रह गये? सैनिक बड़े परेशान हैं।" घबराई हुई बिन्दी ने दौड़ कर अपनी स्वामिनी को यह समाचार दिया।

वह बुरी तरह से हांफ रही थी। उसके मुख से ठीक से शब्द भी नहीं निकल पा रहे थे। वह छत्रसाल की पुत्रवधु की अति विश्वस्त सेविका थीं। जैतकुंवरि के चेहरे पर चिन्ता की रेखाएं उभर आयीं। उसकी स्पष्ट झलक दिखायी दी। वह महाराज छत्रसाल के ज्येष्ठ पुत्र जगतराज की पत्नी थी।

बुन्देलखण्ड पर पठान मुसलमानों ने आक्रमण किया था। सामरिक दृष्टि से और संख्याबल में वे बुन्देलों से कहीं अधिक थे। महाराज छत्रसाल की आयु लगभग ८० वर्ष की हो चुकी थी। निरन्तर युद्ध करते - करते उनका शरीर क्षीण भी हो चुका था। बाजीराव पेशवा की सहायता तब तक नहीं पहुंच पायी थी। उसको यहां तक आने में एक दो माह और लग जाते।

अतएव महाराज ने अपनी रणनीति में परिवर्तन कर दिया। पठानों की बाढ़ को रोकना अति आवश्यक हो गया था। उनको वे एक सीमित दायरे में ही बांध कर रखना चाहते थे। उनको उलझाये रखने के लिए कभी दक्षिण से तो कभी उत्तर से। कभी पूरब तो कभी पश्चिम की दिशा की ओर से, असावधान शत्रु पर अचानक हमला करना और उनको क्षति पहुंचा कर भाग निकलना। उनको सम्हल कर लड़ने का अवसर ही न देना। जब तक वे व्यूहबद्ध होते तब तक अपना काम करके फुर्र हो जाना यह बुन्देलों की रणनीति का अंग बन गया था।

यह नित्य का ढर्रा था। बारी - बारी से एक - एक सेनापति के नेतृत्व में शत्रुओं पर धावा बोला जाने लगा था। बुन्देलों की सेना कब और किधर से आयेगी? इसका मुहम्मद बंगश खां को आभास भी न हो पाता। बाजीराव बड़ी द्रुतगति से उसकी ओर बढ़ते चले आ रहे हैं। इसका भी उसको कोई अनुमान न था। लड़ाकू खूंखार पठानों को अब आगे बढ़ना कठिन हो गया था. . . . किन्तु जहां मुसलमानों को भीषण क्षति उठानी पड़ती वही बुन्देलों की भी कम न होती।

सम्भवतः बारावफात का वह दिन था। मुहम्मद साहब का जन्म दिन। इस दिन मुसलमान बड़ी खुशिया मनाते हैं। त्यौहार का दिवस है। महाराज छत्रसाल के बड़े कुंवर जगतराज ने इसी समय को पठानों पर आक्रमण करने हेतु छाँटा था। उस दिन धावा बोलने का दायित्व उनको ही सौंपा गया था। बारावफात की नमाज अदा करके मुसलमान सैनिक अभी सभी से गले ही मिल रहे थे कि अकस्मात उन पर चारों ओर से आक्रमण हो गया। बहुत से निहत्थे थे। जगतराज की तोपें भी आग के गोले बरसाने लगी थीं।

बहुतों को तो सीधे जन्नत मिल गई। एकत्रित सिपाही झुलस झुलस कर मरे थे। उनके शिविरों में भयंकर आग लग गयी थी। तम्बू, कनात, डेरों सहित उनका सभी सामान अग्नि को स्वाहा हो गया था। उस दिन अग्नि देवता को भरपेट भोजन मिला था। भागती हुई सेना पर मार पड़ने लगी थी। अनेकों तलवार से मौत के घाट उतार दिये गये। पठानों की व्यूह रचना पूरी तरह से छिन्न - विछिन्न हो चुकी थी।

जगतराज का कार्य पूर्ण हो चुका था। बुन्देले सैनिकों को उन्होंने अपने शिविर में लौट आने का आदेश दिया। वे अपने सौंपे गये कार्य को संपादित कर लौट पड़े थे। युवराज का घोड़ा कुछ पीछे ही रह गया था, यह देखने के लिये कि उनका कोई सैनिक पीछे तो नहीं रह गया है। अपने प्रत्येक सैनिक की चिन्ता करना कुशल सेनापति का धर्म होता है। इसीलिए वे कुछ पीछे रह गये थे।

कुछ पठान सैनिकों ने उनका पीछा किया था। उनके हाथ कुछ न आया। अतः वे निराश होकर पीछे लौट चले थे। बुन्देले सैनिक बहुत आगे निकल गये थे। उनकी पकड़ से बहुत दूर। सहसा उनको आते हुए जगतराज

दिखाई पड़ गये। वे तो पहले से ही उनसे खार खाए बैठे थे। उनको सुनहरा अवसर मिल गया। पठानों के दल में कोई बीस लोग रहे होंगे। जगतराज के साथ केवल आठ - दस ही। अफगानों ने उनको घेर लिया। युवराज अपनी पूरी शक्ति से लड़े। वे घायल होकर घोड़े से गिर पड़े। यह सब कब हो गया। उनके सहयोगी साथियों को पता ही न चला। घोड़ा अपने प्राण बचा कर भाग निकला था।

जल्दबाजी और हड़बड़ाहट में बुन्देलों का उधर ध्यान ही न जा सका था। वे तो यही समझ बैठे थे कि जगतराज अपने अश्व पर सवार हो सुरक्षित निकल भागे हैं। सबको इसका पता तब चला, जब उन्होंने अपने शिविर में उनको नहीं पाया। तत्क्षण से ही उनकी खोज शुरू हो गई थी। जैतकुंवरि की नौकरानी बिन्दी के कानों में परस्पर जो चर्चाएं चल रही थीं उसकी ही भनक पड़ी थी। उसी समाचार को उसने अपनी स्वामिनी तक पहुंचाया था।

अब किसी को भी सन्देह नहीं रह गया था कि जगतराज पठानों के हाथों में पड़ गये हैं। पठान घायल व मूर्छित राजकुमार को अपने शिविर में उठा ले गये थे। उनको एक डेरे में रखा गया था। पठान जगतराज को बंदी बना कर अपने सरदार बंगश के सामने प्रस्तुत करने की तैयारी कर रहे थे। जगतराज को बंदी बना लेने का श्रेय अकेले वही सैनिक लूटना चाहता था जो उनको उठा कर शिविर में लाया था।

मुसलमान सरदारों को बंदी बना लेने का छत्रसाल का ही एकाधिकार नहीं है। मुसलमान भी बड़े बड़े सेनापतियों को कैद कर सकते हैं। वे बुन्देलों को नीचा दिखाना चाहते थे। महाराज छत्रसाल न सही उनका बड़ा लड़का ही सही। सभी फूले नहीं समा रहे थे। अफगानी खेमें में उस सैनिक की प्रशंसा की धूम मची थी। यह समाचार बंगश तक भी पहुंच गया था। बुन्देला राजकुमार को उसने जीवित ही अपने सामने प्रस्तुत करने की आज्ञा दी थी। उनको पकड़ने वाले को बहुत बड़ी धनराशि पुरस्कार में देने की भी घोषणा कर दी। जगतराज के बदले में विपुल धनराशि छत्रसाल से वसूलने की उसकी तीव्र इच्छाएं पेंगें मारने लगी थीं।

जैतकुंवर बड़ी धैर्यवान और साहसी महिला थी। उसने अपने सिर पर शिरस्त्राण रखा। छाती पर कवच धारण किया। हाथ में खड्ग और ढाल ले

रणचन्डी दुर्गा के समान अश्व पर सवार हो निकल पड़ी। बिन्दी को उसने पहले ही अश्व को तैयार रखने को कह दिया था। वह सीधे शिविर में आई। सैनिकों को एकत्रित किया।

अपने सैनिकों को संबोधित करते हुए उसने कहा कि "अपने पति को मैं छुड़ाने जा रही हूं। मुसलमानों के हाथों में उनको कदापि नहीं पड़ने दूंगी। उस विधर्मी बंगश के दरबार में बंदी अवस्था में नहीं ले जाने दूंगी। यह है मेरी प्रतिज्ञा। इसी समय मैं अपने पति को लाऊंगी। मेरे साथ वहीं चलें जो जीने ओर मरने को तैयार हों। इस समय महाराज राजधानी में नहीं हैं तो क्या हुआ? मैं उनकी पुत्रवधु तो हूं। मैं आज सेनापतित्व का भार ग्रहण करूंगी।"

इस वीर रमणी के शौर्य को देख कर कौन पुरूष ऐसा था जिसकी भुजाएं न फड़क उठी हों? सभी उसके साथ चलने को तैयार थे। उसने भोर होने की प्रतीक्षा भी नहीं की। मशालें ले पठानों के शिविर की ओर चल पड़ी। उसके साथ चुने हुए सैनिक थे। अपने युवरानी के अदम्य साहस को देख बुन्देलों के रगों में खून दौड़ गया था। सैनिक उसके पीछे - पीछे अश्वों पर सवार हो मुसलमानों के शिविर में जा धमके।

आधी रात का समय था। पठान प्रगाढ़ निद्रा में मगन थे। उन्होंने सपने में भी कल्पना नहीं की थी कि इतने शीघ्र ही उनके शिविर पर बुन्देलों का आक्रमण हो जायेगा। पठान इस आक्रमण के लिए तैयार न थे। प्रातः काल अपने शिविरों को पुनः खड़ा करने की चिन्ता करते - करते वे सो गये थे। दिन भर युद्ध में वैसे ही आंख - मिचौनी होती रही थी। कभी बुन्देले आगे बढ़ जाते और वे पीछे, तो कभी वे आगे और बुन्देले पीछे। वे बड़े थके थे।एक महिला को सेना का नेतृत्व करते देख वे चकित से रह गये।

जैतकुंवरि ने अपने सैनिकों को तीन भागों में बांटा था। पहली टुकड़ी ने पठान सरदार के खास डेरे पर हमला बोला था। दूसरे ने पीछे की ओर जिधर से उनको रसद तथा अन्य सामग्री प्राप्त होती थी, उस मार्ग पर आक्रमण कर दिया था। पठान हड़बड़ाहट में यही समझे कि बुन्देलों ने उनकी रसद लाइन को केवल काटने के लिये यह धावा बोला है। वास्तव में यह उनको चकमा देने के लिये किया गया था जिससे कि ज-:तराज की ओर से

शत्रुओं का ध्यान बंट जाये यही उनका मन्तव्य था।

रानी को उसमें पूरी सफलता मिली थी। उसको यह पता चल गया था कि उसके पति को कहां पर रखा गया है। जगतराज की सुरक्षा में लगे सैनिकों पर आक्रमण करने का दायित्व उसने स्वयं सम्हाला था। पठान सैनिकों का बहुतांश तो अपने फौजदार और रसद पंक्ति की रक्षा के लिए दौड़ पड़ा था। रानी को कुछ रुक कर हमला बोलना था। दोनों मोर्चों पर भयंकर मार काट मच गयी थी। शत्रु सैन्य बल का दबाव इस भाग में कम होते ही , रानी, अपनी पूरी शक्ति के साथ जगतराज की सुरक्षा में लगे सैनिकों पर टूट पड़ी।

वे भौंचक्के से रानी को देखते ही रह गये। सभी बातें अप्रत्याशित ढंग से हो रही थीं। पहले तो उनको समझ में ही न आया कि यह सब क्या माजरा है? असावधान शत्रु मार गिराये गये। बचे खुचे सैनिक भाग निकले। वीरांगना के जोरदार आक्रमण ने उनको पीछे हटने को विवश कर दिया था। एक महिला को नेतृत्व करते देख वे चकित थे। रानी उस डेरे में घुस गयी ज़हां पर उसके पति को रखा गया था।

उसने घायल पति को उठाया। अश्व पर लादा। और घोड़े पर सवार हो चल दी। सभी मुंह बाये खड़े देखते ही रह गये। उसके चुने हुए सैनिक भी साथ में थे। जगत राज पठान शिविर से निकल गये थे। बुन्देले जिसके लिये आये थे, वह काम पूर्ण हो चुका था। अन्य दोनों मोर्चों पर शत्रु को भुलावे में डालने के लिए लड़ रहे बुन्देले भी वापस लौट पड़े थे। आगे जाकर वे भी रानी के दल से जा मिले। उनका पीछा करने का साहस अब पठान न जुटा सके।

बुन्देलों के चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे थे। उनकी आंखों में विजयाभिमान की चमक साफ दीख रही थी। अपनी युवरानी के पराक्रम और शौर्य से उनके सीने गर्व से फूल उठे थे। उसके साथ इस अभियान में जाने का उनको सुअवसर मिला, अपने भाग्य को सराहते घूमते। महाराज छत्रसाल को पन्ना में जब इस घटना का समाचार मिला,उनका मन - मयूर नाच उठा।

उनके हृदय के तंतु - तंतु प्रसन्नता से आल्हादित हो उठे। वे पुत्र और पुत्रवधू को देखने के लिए मंगलगढ़ दौड़े - दौड़े गये। नवदुर्गा रूपी पुत्रवधू को

देखने को उनका मन व्यग्र हो उठा था। एक बड़े समारोह का आयोजन किया गया। कुंवर जगतराज पूर्ण स्वस्थ हो चुके थे। सर्व प्रथम तो महाराज ने दिवंगत आत्माओं को श्रद्धांजलि अर्पित की। उनके परिवारों को सहायता प्रदान की। सैनिकों को अपने ही हाथों से पुरस्कार बांटा जैतकुंवरि को 'वीरागंना' की उपाधि से विभूषित किया। वीरांगना जैतकुंवरि भी महाराज छत्रसाल के साथ - साथ इतिहास में अमर हो गई।

— * —

जौहर का तालाब

बुन्देलखण्ड की गाथाओं को लिखते समय उसके एक गौरवशाली पृष्ठ का उल्लेख किये बिना मुझसे न रहा गया। मध्यप्रदेश में बेतवा के सुरम्य तट पर एक सुरम्य नगर है, चन्देरी का। इसको यदि मंदिरों का नगर कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। मीलों लम्बे - चौड़े क्षेत्र में यह फैला हुआ था। उसका अपना एक सुन्दर किला भी था। उसके तीन ओर पर्वतों की श्रंखलाएं थीं।चौथी ओर हरहराती बेतवा सदा बहती रहती। स्वयं में एक सुदृढ़ दीवार के समान वह उसकी रक्षा करती रहती।

जहां - तहां पर्वत सकरा था, उसने एक दर्रे का रूप धारण कर लिया था। उसको भीमकाय पाषाण खंडों से भरा गया था। अभेद्य दीवार के समान वह खड़ी की गयी थी। उसका बाहरी परकोटा इतना मजबूत था कि किसी भी शत्रु का उसमें प्रवेश कर पाना सरल न था। किले के चारों ओर एक अन्दरूनी परकोटा भी था। उसी में नगर की बस्ती बसी हुई थी। पर्वत की एक ऊंची टेकड़ी पर राजा मेदिनी राय का महल था। किले तथा नगर के रक्षार्थ चौबीसों घंटे सैनिक सदैव सन्नद्ध रहते।

१५२७ का वह वर्ष था। दिल्ली के हिन्दू सम्राट महाराणा सांगा विदेशी आक्रान्ता बाबर से पराजित हो चुके थे। चंदेरी राज, राणा संग्राम सिंह के अनन्य मित्र और भक्त थे। दोनों ने मिलकर उस आततायी से स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई लड़ी थी। दोनों मित्रों ने हारी हुई बाजी को विजय में पलट देने का उपक्रम भी किया था। मेदिनी राय और चन्देरी हिन्दू प्रतिरोध का प्रमुख केन्द्र बन गये थे।

. . .व्यक्ति सोचता कुछ. . . . पर विधाता करता कुछ और ही है।

राणा संग्राम सिंह की बीच में ही मृत्यु हो गई।बाबर के मार्ग में अब सबसे बड़े बाधक बचे थे, मेदिनीराय, चन्देरी का हिन्दू शक्ति केन्द्र। विजय की प्रसन्नता में बाबर ने अपना समय व्यर्थ में नहीं गंवाया। एक वर्ष भी नहीं बीता था कि वह विशाल सेना ले चन्देरी की ओर बढ़ चला। अति शीघ्र ही चन्देरी के किले के समीप तक मुगल सेना जा पहुंची थी।

पर्वतों की श्रंखला! उसकी नैसर्गिक छटा! पर्वतीय प्राचीर को देखकर वह दंग रह गया। वह सुरसा के समान उसका रास्ता रोके खड़ी थी। उससे ही सटा हुआ एक और छोटा सा दुर्ग था। बाबर के आक्रमण को रोकने के लिए दुर्गपाल मैदान में आ डटा था। कई दिनों तक युद्ध चलता रहा। कई बार मुगलों को पीछे धकेल दिया गया। उस छोटे से नायक ने बाबर के दांत खट्टे कर दिये थे। उसके सामने बाबर की बर्बरता न चल सकी। शत्रु को लेने के देने पड़ गये थे।

मेदिनीराय को पराजित करना वह जितना आसान समझता था वैसा न निकला। चन्देरी की सीमा पर टकरा कर ही उसको इसका अहसास हुआ। उसका भ्रम टूट गया था। उसको जीतना तो दूर रहा, वह उसके दर्शन तक न कर सका। उसको ऐसे ही लड़ते - लड़ते तीन माह बीत गये थे। उसकी सेना में निराशा फैलने लगी थी।

अब उसने अपना मायावी जाल फेंका। भोला - भाला सीधा - साधा दुर्गपति यही पर मात खा गया। वह उसके मोहक फंदे में फंस गया। उसकी चाल को न समझ सका था। बाबर ने संधि का प्रस्ताव किया था। वापस लौट जाने का नाटक रचा। वास्तव में उसको कुछ समय चाहिये था। पर्वत को तोड़कर चन्देरी में घुसने का मार्ग बनाने को। उसने दुर्गपाल महिपत को वार्ता के मोह जाल में फंसाये रखा। इस बीच बाबर ने पर्वतों की प्राचीर को बड़ी गहराई से देखा और उसका अध्ययन किया। एक स्थान पर उसको कमजोरी दिखाई दी।

वहां पर पर्वत संकरा और पतला था। वही से पर्वत को तोड़ कर मार्ग बनाना सम्भव था। यह कार्य था बड़ा ही कष्ट साध्य और कठिन। यही भारत में उसके प्रवेश का द्वार खोलने वाला था। उसकी सफलता और असफलता इसी पर निर्भर करती थी। उसने साहस नहीं छोड़ा था। बाबर ने चुपके से

अपने कुछ सैनिकों का चयन किया। इस टुकड़ी को उधर भेज दिया। दिखावे के तौर पर वह डेरा डाले पड़ा. . . . . था पर पर्वत को तोड़ने में संलग्न था। सारा कार्य इतनी सावधानी से किया जा रहा था कि दुर्गपाल महिपत को उसका जरा सा भी आभास न हो सका।

गढ़ी के सामने बाबर स्वयं ही डेरा डाले पड़ा था। महिपत वार्ता के चक्कर में ही उलझ कर रह गया था। अंत में शत्रु के प्रयत्न फलित हुए। मार्ग को अवरुद्ध करने वाली चट्टान बिखर गई। दीवार में छेद हो गया। प्रवेश का मार्ग खुल गया। किलेदार को जब इसका पता चला तो वह बौखला गया। अतिक्रोधित हुआ। किन्तु उसका जो दुष्परिणाम होना था वह तो होकर ही रहा।

"बाबर बड़ा ही धोखेबाज है। धूर्त कहीं का।" वह दांत पीसता, बड़बड़ाता हुआ अपनी सेना ले उस पर टूट पड़ा।

मुस्लिम की मानसिकता को वह न समझ सका था। अपने ही समान उसको भी वचन का पक्का समझ रहा था। बाबर से वह इतनी वीरता से लड़ा कि उसकी आधी से अधिक सेना को मार गिराया। वह भी मुगलों से लड़ता हुआ वीर की भांति शहीद हो गया। इसके बाद भी वीरतापूर्वक बुन्देले लड़ते रहे थे। चन्देरी के दुर्ग में मुगल प्रवेश न पा सके। देशके शत्रुओं और देशभक्तों के रक्त से वहां की धरा रंग गयी थी। मेदिनी राय भी किले से बाहर निकल कर उससे जूझ रहा था। कालान्तर में उसकी ख्याति "खूनी दरवाजे" के नाम से प्रचलित हो गई।

मुगलों को सहायता लगातार बाहर से मिलती रही थी। उधर का रास्ता खुला था। बार - बार मुगल अन्दर प्रवेश करने का प्रयत्न करते और मार गिराये जाते। दो माह तक खूनी दरवाजे पर ही यह आंख मिचौनी का खेल चलता रहा था। मेदिनी राय ने तो देव सेनापति कार्तिकेय को भी मात कर दिया था। किले की रक्षा के लिए माताएं बहनें तक काली मैया का रूप धारण कर नंगी तलवारें लिये मैदान में आ डटी थीं।

सशस्त्र रमणियों का अटल निश्चय था कि वे जीते जी शत्रु के हाथों में नहीं पड़ेंगी। विजय का नहीं पर मृत्यु का वरण तो कर ही सकती थीं। वे मरने और मारने पर उतारू थीं हिन्दुस्तानी अबला भी कैसे अतिबला बन

जाती है? भारतीय ललनाओं की वीरता और सतीत्व की प्रखरता के बारे में बाबर ने सुन तो बहुत रखा था पर उसने यहां पर प्रत्यक्ष उसका दर्शन किया था।

शत्रुओं से अनवरत जूझते रहने से राजपूतों की संख्या क्षीण होने लगी थी। उनको लड़ते - लड़ते दो माह और बीत गये थे। किले पर अभी भी [illegible] थी। मेदिनीराय को बाबर से कोई [illegible] नहीं मिल [illegible] थी। अब अधिक समय [illegible] की [illegible] सम्भव न था। [illegible] संकेत दे दिया [illegible] समझ [illegible] का अपना [illegible]

[illegible] हिन्दू वीरों के सामने अब दो ही अवलम्ब बचे थे। विदेशियों के सामने आत्मसमर्पण करना. . . या. . . आत्मार्पण करना. . .। पुरुषों ने केसरिया बाना धारण किया। माताओं - बहनों ने उनको अन्तिम बिदाई दी। शत्रुओं को मरने - मारने का बज्र संकल्प ले वे मैदान में उतर पड़े। शत्रु पर कहर बन कर टूट पड़े। यह उनका आखिरी प्रयास था।

उस समय एक क्षण ऐसा भी आया कि बाबर की कब्र वहीं पर बन जाती। राणा सांगा की पराजय का प्रतिशोध लेने का श्रेय मेदिनी राय को मिलता. . . किन्तु भाग्य ही टेढ़ा था. . .और क्या कहा जाये? विजय के अन्तिम क्षणों में एक तीर ऐसा आया जिसने चन्देरी के भाग्य का फैसला कर दिया। मेदिनी राय की छाती में वह जा घुसा था! निष्चेष्ट हो उनका शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। कर्तव्य की बलिवेदी पर भारत माता का वह सपूत बलि चढ़ गया. . . फिर भी वीर राजपुत्र अपनी अन्तिम सांस तक लड़ते रहे। उनके हाथ से बाजी निकल चुकी थी। उनमें से एक भी जिन्दा न बचा था।

माताओं - बहनों की दृष्टि सहसा किले के बुर्ज पर जा पहुंची। उस पर लहराता भगवा आंखों से ओझल हो चुका था। जौहर की अब घड़ी आ चुकी है, उन्होंने समझ लिया। चिताएं सजाई गयीं उनको अग्नि से प्रज्जलित किया गया। धू . . .धू कर वे जल उठीं। बारह सौ रमणियों ने अग्नि के फेरे

किये। चिताओं पर वे जीवित ही चढ़ गईं। शत्रुओं की अंक शयिनी बनकर अपमानित और लांछित जीवन जीने के बजाय उन्होंने जिन्दा चिता में जल जाना पसन्द किया था। भारत माता की कलंकित पुत्रियां बनने से अधिक श्रेयस्कर अपने शरीर को भस्म करना सार्थक माना। भारत के भव्य भाल पर उनकी भस्मियां गौरव का टीका बन चमक उठीं।

वे अपने साथ अबोध शिशुओं को भी लेकर चिता पर चढ़ी थीं। उनको मोह विचलित न कर सका था। बालक मुसलमानों के हाथों में न पड़े, धर्मान्तरण के शिकार न हों, भारतद्रोही न बनें, यही उनकी दृष्टि थी। उस समय बच्चों को सुरक्षित स्थान पर निकाल ले जाना सम्भव न था। एक विजयी की भांति गर्व से अपना सीना फुलाये बाबर ने किले में प्रवेश किया। वह एक क्षण को तो हक्का - बक्का सा ही रह गया।

धन्य है भारत की माटी। उसको एक भी प्राणी वहां पर जीवित न मिला था। स्थान निर्जन और सुनसान था। भौं. . .भौं. . .भौं भूंकते कुत्ते इधर - उधर उसको स्वागत करते मिले थे। वे भी इतने उग्र थे कि कइयों को उन्होंने काट खाया था। वह दौड़ता हुआ तालाब पर पहुंचा। वहां पर उसको मिली थी बस सतियों की चिताओं की राख। आज उसी स्थान पर खड़ा है सतियों का स्मारक! भारत की इन श्रेष्ठ पुत्रियों की यशगाथा को वह गा रहा है, "जौहर का तालाब", इसी नाम से वह प्रसिद्ध है।

बाबर ने उसको देखा। उसकी अन्तरात्मा ने उसको धिक्कारा, "मूर्ख कहीं का! तू हिन्दू को मिटाने चला है। जब तक हिन्दू नर - नारियों में अपने धर्म और देश के प्रति ऐसे उदात्त भाव रहेंगे, उसको कौन नष्ट कर सकता है? ऐसी अनेकों आंधियां आयेंगी और जायेंगी। भारत का वे कुछ न बिगाड़ सकेंगी। हिन्दू संस्कृति नष्ट न होगी।"

इतिहास कहता है कि भारत पर सात सौ वर्षों तक मुसलमानों और अंग्रेजों के निरन्तर बर्बर आक्रमण होते रहे थे। . . .वे भी चले गये. . .किन्तु अभी हिन्दू संस्कृति गौरव से जीवित है। हिन्दू पुनः अंगड़ाई लेकर खड़ा हो गया है।

— * —

हिन्दू - हिन्दू एक

"कहिए त्र्यम्बक जी! चिमाजी ने किसको भेजा है? क्या बात है? सब कुशल तो है ना. . . . .।" पेशवा बाजीराव ने अपने सलाहकार से पूछा।

"पेशवे श्रीमान्त! चिमाजी अप्पा ने बुंदेलखण्ड के महाराजाधिराज के विशेष दूत को उज्जैन से आपके पास एक संदेश लेकर भेजा है। वह दरबार में उपस्थित होकर आपसे कुछ निवेदन करना चाहता है।" अमात्य ने प्रत्युत्तर में पेशवा से कहा।

बाजीराव यद्यपि आयु में थे तो छोटे, किन्तु बहुत ही दूरदर्शी महापराक्रमी और धुरंधर, राज व कूट नीतिज्ञ थे। उस समय उनकी आयु २७ -२८ वर्ष की थी। उनका छोटा भाई चिमाजी भी भाई के समान ही होनहार था। दोनों भ्राताओं ने एक साथ दो - दो मुस्लिम सत्ताओं से लोहा लिया था। बाजीराव को अभी पेशवाई सम्हाले हुए दो - तीन बरस ही हुए थे कि मुस्लिम सत्ताओं ने मिलकर मराठों के विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया था उनका अनुमान था कि पेशवा तो अभी छोटा और अनुभव हीन ही है। वह कच्चा है। क्या कर सकेगा?

भ्राता द्वय ने साहस के साथ शत्रुओं की चुनौती स्वीकार कर लिया था। बाजीराव सेना सजा कर देवगढ़ और चिमाजी मालवा की ओर प्रस्थान कर गये थे। संयोग कुछ ऐसा बना था कि दोनों भाइयों ने एक साथ ही मुस्लिम रियासतों को धूल चटा दिया था। चिमाजी ने मालवा के सुल्तान को और दक्षिण में बाजीराव ने देवगढ़ को जीत कर हिन्दू परचम उस पर फहरा दिया था। वे कुछ समय से देवगढ़ में ही व्यवस्था हेतु डेरा डाले पड़े थे। छत्रसाल का सन्देश वाहक वहीं पर पहुंचा था।

चिमाजी ने उज्जैन को अपना केन्द्र बनाया था। बाजीराव वहां पर होंगे, ऐसा समझ कर ही बुन्देलखण्ड अधिपति ने अपने विशेष दूत को उज्जैन भेजा था। चिमाजी ने रघुपति को बाजीराव से मिलने को देवगढ़ भिजवाया।

पेशवा ने आदेश दिया, "महाराज छत्रसाल के दूत को मेरे समक्ष पेश किया जाये।"

रघुपति बुन्देलखण्डी वेशभूषा में था। वह श्रीमंत पेशवा के सामने उपस्थित हुआ। उसने तीन बार धरती से झुककर बाजीराव को प्रणाम किया और आगे बढ़कर उनके हाथों में अपने महाराज की चिट्ठी दे दी [illegible] पेशवा ने [illegible] कविता में थी। उसका [illegible]

[illegible] - ग्राह कर, सो गति [illegible] आज

[illegible] बुन्देल की, [illegible] राखो [illegible]

यह बात है [illegible]२८ की। छत्रसाल अपने जीवन के अन्तिम चरण में थे। वृद्धावस्था को पार कर रहे थे। उस समय उनकी आयु ८० वर्ष की थी। औरंगजेब को भी मरे हुए इक्कीस बरस बीत चुके थे। मुगल सत्ता छिन्न भिन्न हो चुकी थी। केवल वह दिल्ली और उसके आस - पास तक ही सिमट कर रह गयी थी।

उनके हृदय की व्यथा कविता में प्रकट हुई थी। कविताओं में ही विशेष पत्र लिखने की महाराज की आदत थी। यदि शत्रु के हाथ में भी वह पड़ जाये तो भी वह कुछ न समझ सकें। कदाचित् इसीलिए।. . : .जो कुछ भी हो. . . .।

बाजीराव ने दूत से कहा, "रघुपति पंडित! विस्तार से अपनी बात कहो! बिना किसी संकोच के। मैं मित्र हूं। मेरे अन्तःकरण में महाराज के प्रति बड़ा आदर है! वे मेरे पितृतुल्य हैं। प्रत्येक हिन्दू को उन पर गर्व होना चाहिए। उनके शौर्य और पराक्रम के संबंध में मैं बहुत सुन चुका हूं। मेरे योग्य जो सेवा होगी वह अवश्य करूंगा।"

रघुपति भी कवि ही था। उसने बड़े ही प्रभावशाली और हृदय ग्राही कवित्तपूर्ण भाषा में महाराज के पत्र का आशय समझाया, श्रीमन्त पेशवे! आप स्वराज्य संस्थापक शिवाजी के प्रतिनिधि हैं। हिन्दू कुल भूषण के पद चिन्हों

पर चलकर सम्पूर्ण महाराष्ट्र से आपने हिन्दूद्रोही मुस्लिम सत्ताओं को उखाड़ फेंका है? आप दक्षिण में क्रियाशील हैं। हमारे महाराज ने भी बुन्देलखण्ड में छत्रपति शिवाजी की प्रेरणा से ही उसी कार्य को संपादित किया है। विडम्बना है कि इस समय वें घोर संकट में पड़े हैं। मुहम्मद बंगश ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया है। अगर वह अकेला होता तो महाराज अब तक उसको निपटा दिये होते। अब तो मुगल और कई मुस्लिम रियासतें भी उससे आ मिली हैं।

सभी हिन्दू द्रोही शक्तियां एक जुट होकर हिन्दवी स्वराज्य क इस वट वृक्ष को उखाड़ फेकना चाहती हैं। यद्यपि आपका और महाराज का रक्त का नाता तो नहीं है पर हिन्दू रक्त दोनों में एक ही है। बुन्देलखण्ड पर आक्रमण, सारे भारत पर आक्रमण है। हिन्दू - हिन्दू एक हैं। कन्याकुमारी से हिमालय तक। अतः बिना किसी लाग लपेट के महाराज छत्रसाल ने आपसे सहायता की याचना की है। उनकी अवस्था तो इस समय ऐसी ही हो गई है, जैसी भगवान भक्त गज की हुई थी। दुष्ट ग्राह नदी में गज का पैर खींचकर ले चला था; वह डूबने को ही था। तभी उसने सच्चे हृदय से भगवान को पुकारा था। विष्णु भगवान सुदर्शन चक्र ले दौड़ पड़े थे। भक्त की रक्षा की थी। आप भी शीघ्र ही दौड़ें. . . .सहायता को। इस आंधी को रोकें।'' यह कहते - कहते रघुपति की आंखें डबडबा आईं।

उसका गला रुंध गया था। कवि हृदय था, बड़ा ही भावुक। बाजीराव सिंहासन से उठे। रघुपति को गले से लगा लिया।

वे बोले, ''पंडित जी ऐसे समय में भी यदि हिन्दू, हिन्दू के काम न आया तो अपने को हिन्दू कहना गैरत है। शीघ्र जाओ। अपने महाराज से कहो। आपका यह पुत्र अपनी विपुल सेना के साथ आ रहा है। उज्जैन से चिमाजी भी पंहुचेगा। मैं उसको संदेश भेज रहा हूं। मां भवानी की कसम। हम सब मिलकर इन हिन्दू द्रोहियों, उन्मादी इस्लाम पंथियों के विषैले दांत को सदा - सदा के लिए तोड़ डालेंगे। उनको फुफकराने के लायक भी नहीं छोड़ेंगे। . . .जब तक हम नहीं पहुंचते . . .पिता श्री से कहना उनको रोक रखें।''

रघुपति पंडित प्रफुल्लित मन से बाजीराव पेशवा का संदेश लेकर चल

पड़ा था बुन्देलखण्ड की ओर। उसको तो जैसे पंख लग गये थे। वह शीघ्र ही महाराज छत्रसाल के पास पहुंच गया। बुन्देलों में उत्साह की लहर दौड़ गई थी। बुन्देलाधिपति ने अपनी रणनीति बदली थी। वे युद्ध को लम्बा खींच रहे थे।

मुहम्मद बंगश खाँ एक अफगानी लुटेरा था। उसके पास पठानों की सशस्त्र सेना थी। मुगलों के राज्य में लूट-पाट करता और अपनी आजीविका चलाता। छोटे-मोटे राजा और जागीरदार उसका उपयोग करते। उसको धन देकर अपने प्रतिद्वंद्वियों का सफाया कराते। वह घात लगा कर उनकी हत्या कर डालता। यह था, उसका धंधा। उसके शक्तिशाली बनने की भी एक अजीबोगरीब कहानी है।

सन् १७१२ में बहादुरशाह की मृत्यु हो गई। वही मुगल बादशाह था। औरंगजेब का पुत्र! मुसलमानों की परंपरा के अनुसार जहांदारशाह और फर्रुखसियर में उत्तराधिकारी के लिए संग्राम हुआ। बंगश ने फर्रुखसियर का साथ दिया। संयोग से फर्रुखसियर विजयी हुआ। मुहम्मद बंगश ने उसका श्रेय लूटा। वह मुगल बादशाह की नाक का बाल बन गया। दिल्ली का नया सुल्तान अपने बाबा के समान ही मजहबी उन्मादी और हिन्दू द्रोही निकला।

उसने मुहम्मद बंगश से सांठगांठ कर ली। वह अपने को बचाना चाहता था। मुगल सत्ता तो खात्मे की ओर थी। फर्रुखसियर ने उसको चार सहस्र सैनिकों का सेनापति नियुक्त कर दिया। नवाब की उपाधि से विभूषित किया सो अलग से। १७१८ में फर्रुखसियर की भी मृत्यु हो गई। मुहम्मदशाह के हाथ में शासन की बागडोर आई। वह और भी दुर्बल निकला। पिता के पदचिन्हों पर चल पड़ा।

उसने मुहम्मद बंगश को सात हजारी मनसब का खिताब और इलाहाबाद की सूबेदारी सौंप दी। इलाहाबाद उसके पकड़ के बाहर तो जा ही चुका था। लूटो और खाओ! की उसको छूट दे दी थी। पूरे मुगल साम्राज्य में अराजकता का माहौल गरम था। सुल्तान स्वयं में असमर्थ था। अतः उसने बंगश को छत्रसाल से भिड़ाना ही ठीक समझा था। सेना के व्यय के लिये कालपी-एरच आदि के क्षेत्र को लूटने को उकसाया। इस सारे क्षेत्र पर बुंदेलों का आधिपत्य था।

महाराज छत्रसाल ने इस कार्यवाही को हिन्दुओं के लिये एक प्रबल चुनौती समझा। उसी वर्ष बंगश ने यमुना को पार किया और कालपी के क्षेत्र में घुस आया। उसने सभी थानों पर अपने अधिकारियों और हाकिमों को नियुक्त कर दिया था। छत्रसाल को जैसे ही समाचार ज्ञात हुआ, उन्होंने अपने पुत्र जगतराज के सेनापतित्व में एक सेना भेजी। बुंदेलों ने पीर अली खाँ और उसके पुत्र को समाप्त किया। बंगश के सभी थानों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

वह आग बबूला हो गया। उसने बुंदेलों पर आक्रमण कर दिया। इतिहास फिर दुहरा। जगतराज ने बंगश को अच्छी मार दी और सीख सिखाई। वह पकड़ा गया। माफी मांगने और फिर कभी न आने का वायदा करने पर उसको छोड़ दिया गया। यदि उसको उसी समय समाप्त कर दिया गया होता तो शायद यह मुसीबत न आती। मुहम्मद बंगश अपने इस अपमान को जीवन भर न भुला सका। वह प्रतिशोध लेने की तैयारी करने लगा था।

उसने धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ा ली। सन् १७२४ का वर्ष था। उसने कालपी में पुनः यमुना को पार किया। उसके साथ इलाहाबाद की १५ हजार की सेना भी थी। उसको देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि छत्रसाल के पुत्र जगतराज और हृदयशाह उसके मुकाबले को तैयार खड़े हैं। इस बार भी बुंदेलों ने पटखनी लगाई। उसको घेर कर मारने का प्रयत्न किया पर किसी प्रकार से वह बच निकला। अपने सैनिकों को कटवा कर वह इलाहाबाद चला गया था। इसी युद्ध में जगतराज घायल हुए थे और रानी जैत कुँवरि अपने पति को यवन शिविर से वीरतापूर्वक लड़कर उठा ले गई थीं।

१७२८ का साल आया। बसन्त का सुहावना मौसम था। बुंदेले यही समझते रहे थे कि मुहम्मद बंगश खाँ के पर कुतर दिये गये हैं। अब वह इधर देखने का साहस न कर सकेगा। दो बार वह मुंह की खा ही चुका था। बुंदेलों का आकलन गलत निकला। इस बार उसने चालाकी से काम लिया। अपनी सेना के उसने तीन भाग किये थे। पहले भाग का नेतृत्व अपने पुत्र हादी दाद खाँ को और दूसरे का दूसरे पुत्र कायमखाँ को सौंपा था। तीसरे हिस्से की बागडोर स्वय अपने हाथों में ली थी। इन तीनों भागों ने इलाहाबाद में ही यमुना को पार किया। यमुना के किनारे चलते-चलते वे तीन ओर से कालपी

की ओर बढ़े थे। इस बार उनके पास मुगलों का तोपखाना भी था। यही आक्रमण बुंदेलखंड के लिये संकट उत्पन्न करने वाला बना था।

मुहम्मद बंगश पचास मील अन्दर तक घुस आया था। तारवाहन के मोर्चे पर सर्वप्रथम उसका बुंदेलों से सामना हुआ। उसके दो हजार सैनिक मार गिराये गये। किन्तु टिड्डी दल के समान मुसलमान सेना बढ़ती ही गई। ऐसा लगा कि जैसे वे रक्तबीज ही हों। वे निर्णायक युद्ध लड़ने पर आमादा थे। महाराज छत्रसाल ने परिस्थिति की गम्भीरता को समझा। इस समय उनको आराम की आवश्यकता थी। कोई उपाय न देख वे स्वयं ही खड्ग ले मैदान में आ डटे थे।

छत्रसाल ने इचौली में अपना मोर्चा लगाया था। यह स्थान बांदा से १० मील की दूरी पर है। बुंदेलों में उत्साह की लहर दौड़ गई। बूढ़ी नसों में अभी भी कितना बल है। युद्ध में उनका हस्त कौशल देखने लायक था। बंगश के दोनों सेनापति भूरेखाँ और दिलावर खाँ मार गिराये गये। अफगानों में भगदड़ मच गई। मुहम्मद बंगश भी मैदान छोड़ कर भागने वाला ही था कि उसकी सहायता को मुगल सेना आ गई।

जगतराज सालहट के जंगलों में और हृदयशाह अजनार के पहाड़ों में क्रमशः हादीदखाँ और कायमखाँ से लोहा ले रहे थे। वे प्राण प्रण से लड़ रहे थे। उन दोनों भागों को वे बंगश के साथ मिलने नहीं देना चाहते थे। यह उनकी रणनीति थी। उसमें उनको सफलता भी मिली थी। बंगश बड़ा परेशान था कि अभी तक वे क्यों नहीं आये?

महाराज छत्रसाल ने अब जैतपुर के किले को अपना केन्द्र बना लिया था। यहीं से उन्होंने अपने अतिविश्वस्त दूत रघुपति पंडित को बाजीराव पेशवा के पास सहायता मांगने भेजा था। पूरे एक वर्ष तक छत्रसाल, मुगलों और बंगश की सम्मिलित सेना से, लोहा लेते रहे थे। मुसलमान परेशान हो गये थे किन्तु फिर भी वे हटने का नाम नहीं ले रहे थे। छत्रसाल को समाचार मिला कि अतिशीघ्र ही बाजीराव पेशवा बुंदेलखंड में प्रवेश करने वाले हैं। उन्होंने आगे बढ़कर पेशवा का स्वागत किया। बिना समय गवांये दोनों पक्षों के सरदारों की गुप्त मंत्रणा हुई। विशेष योजना बनाई गई थी।

प्रातः की पौ फटी। उस दृश्य को देखकर मुहम्मद बंगश खाँ की आंखें

फटी की फटी रह गईं। हर-हर महादेव - जय भवानी के उद्घोष के साथ मराठों और बुंदेलों की सम्मिलित सेना ने अफगानों और मुगलों पर चारों ओर से प्रहार करना शुरू कर दिया था। उनका शिकंजा शत्रुओं को कसता गया। मुसलमानी सेना पूरी तरह से घिर गई थी। रसद आदि पहुँचने के सभी मार्ग अवरुद्ध कर दिये गये थे। लगभग दो तिहाई शत्रु सेना मार गिरायी गयी थी। जो भी घेरे को तोड़ कर चोरी छिपे भी निकलने का प्रयत्न करता वह भी मार गिराया जाता। मुसलमानों की सेना को घोड़ों, बैलों को मार-मार कर खाने को विवश होना पड़ा था। सभी भूखों मरने लगे थे। प्यास से उनका बुरा हाल हो गया था। करबला में कैसा हुआ होगा? इसका उन्होंने वहाँ प्रत्यक्ष अनुभव किया था।

मुहम्मद बंगश अपने पुत्रों के आगमन की प्रतीक्षा करता ही रह गया। उसके मन की मन में ही रह गई। उसका पुत्र कायम खाँ जो कि पूर्वी भाग में था चिमाजी की मराठी सेना ने उसको वहीं पर जा धर दबोचा। एक ओर मराठे और दूसरी ओर हृदय शाह थे। दो पाटों के बीच में कायमखाँ सेना सहित पिस कर रह गया। इस युद्ध में मराठों को उसके तीन सहस्र घोड़े और कुछ हाथी मिले थे।

दूसरी ओर जगतराज ने हादीदादखाँ को पूर्णतः परास्त कर दिया था। शत्रु सेना तीनों मोर्चों पर पूरी तरह से छिन्न-भिन्न हो गई वह मारी गई थी। इसने मुहम्मद बंगश के दिल को पूरी तरह से तोड़ डाला था। वह उठने लायक भी न रहा। उसने छत्रसाल के पास क्षमायाचना का प्रस्ताव भेजा। बुंदेलखंड से तुरंत वापस चले जाने का और फिर कभी न आने का उसने वचन दिया था। महाराज छत्रसाल की भी लम्बे युद्ध के कारण काफी हानि हुई थी, अतः उन्होंने बंगश को क्षमा कर दिया। फिर कभी बंगश बुंदेलखंड में नहीं आया। दोनों सत्तायें शक्तिहीन हो चुकी थीं।

बाजीराव को छत्रसाल ने अपने तीसरे पुत्र के रूप में अंगीकार किया था। वह भी उनको 'काका जू' कह कर सदा संबोधित करता रहा। अवसान को सन्निकट जान उन्होंने अपने राज्य के तीन भाग किये थे। पहला पुत्र जगतराज और दूसरा हृदयशाह को दे दिया। कालपी, कोंच, झांसी, सागर आदि के क्षेत्रों को तीसरे पुत्र बाजीराव पेशवा को प्रदान किया था। बाजीराव

अपने धर्म पिता के अंतिम संस्कार में उपस्थित हुआ था। संस्कार के व्यय में तीसरे पुत्र के नाते उसका भी सहभाग था। छत्रसाल की समाधि बनवाने में उसका भी हाथ था।

इस महायुद्ध के बड़े सुखद परिणाम निकले थे। महाराष्ट्र और बुंदेलखंड की हिन्दू शक्तियों के मिलन ने देश में एक नये अध्याय का शुभारम्भ किया था। उसको नयी दिशा प्रदान की थी, जिसने आगे के कुछ वर्षों में ही भारत से मुस्लिम साम्राज्य को पूर्णतः उध्वस्त कर डाला था। जो कुछ इने-गिने बचे भी थे, वे हिन्दुओं की कृपा पर ही अवलम्बित होकर जिंदा थे।

अपने कर्तृत्व के कारण बुंदेलखंड में छत्रसाल भगवान बन कर पूजे जाने लगे। लोग रोज प्रातः काल उठकर आज भी छत्रसाल को स्मरण करते हैं—

'छत्रसाल महाबली- करियो सब भली-भली।' यह उच्चारण कर दिन की शुभ शुरुआत के लिये कामना करते हैं।

— ❋ —

इतिहास का एक अनखुला पृष्ठ*

प्रातः काल का समय था। महाराज कुमार जगतराज नित्य की भांति आखेट को निकले थे। उनके साथ में सैनिकों की एक छोटी सी टोली भी थी। शिकार के पीछे भागते-भागते वे मलदुआ गाँव में जा पहुंचे। यह मंगलगढ़ के पूरब में स्थित था। पता नहीं क्यों उस दिन शिकार में उनका मन न लगा। मन उदास और उचाट था।

विचरण करते-करते वे पहाड़ी पर जा पहुंचे। एक शिला खंड पर बैठ गये। प्रकृति की मनोहारी छटा का अवलोकन कर ही रहे थे कि सहसा उनकी दृष्टि एक चट्टान से जा टकराई। उसमें अंकित पंक्तियों को देख वे आश्चर्य में पड़ गये। उसको बड़े ध्यान से देखा। उनकी समझ में कुछ न आया। पहेली नुमा भाषा में यह लिखा था-

ऊखर पूखर ढीलन नाम
गुफा पुन औ कुड़वारी।
मारहि तारहिं मिलै नवलखा
बहत्तर कोटि गढ़ा भुबवारी।।

उक्त पंक्तियां उनके दिमाग में बैठ गयीं। सायंकाल मंगलगढ़ को लौटे। महाराज छत्रसाल ने इस किले को जीता था। किसी समय यहाँ पर चन्देलों का राज था। महाराज ने इसको अपने पुत्र जगतराज को भेंट कर दिया था। आज यह किला चरखारी के किले के नाम से प्रसिद्ध है। हमीरपुर जिले में स्थित है।

---

*"महाराज छत्रसाल का पत्र" उदय शंकर दुबे प्रयाग पृष्ठ ८१ अप्रैल प्रेरणा अंक उसी के आधार पर केन्द्र भारती मासिक पत्रिका

जगतराज प्रायः यहाँ अवकाश के दिनों में आया करते थे। इस समय कुछ दिनों से उनका यहीं पर पड़ाव पड़ा था। रात्रि में भोजनादि से निवृत्त हो वे अपने शयनागार में गये और तख्त पर लेट गये। पर उनकी आंखों में से नींद उड़ गई थी। उनके मानस पटल पर रह-रह कर पहेली की वही पंक्तियां उभर आतीं।

जैसे - तैसे उन्होंने रात काटी। प्रातः तैयार होकर दरबार में आ विराजे। लेकिन प्रशासनिक कार्य में जी न लगा। बार-बार वही पंक्तियां स्मरण हो आतीं। उनके मन में कुतूहलता जो जग गई थी। संयोग से उसी समय किसी कार्य से पुहुपशाह आ धमके। वे अपने समय के प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य और प्रकांड पंडित थे। इस प्रकार की पहेलियों और बीजकों को पढ़ने में उन्होंने सिद्धता प्राप्त की थी। जगतराज ने शाह का ध्यान उस पहेली की ओर आकृष्ट किया।

पुहुपशाह ने प्रयत्न करके उसका अर्थ निकाला। उसका आशय यह था। "चन्देलराज परमाल की मृत्यु के पश्चात् माहिल ने उनकी विपुल संपदा को हड़प लिया। उसने उसको गुप्तरूप से मालदुआ, टोलागांव और सुहानिया में धरती में गड़वा कर छिपा रखा था।"

किसी समय उसको खुदवाकर वह उसका उपभोग करता। किन्तु उसकी मृत्यु हो गई। वह रहस्य के गर्त में चला गया था। अपने पहचान के लिये ही उसने शिला पर यह उत्कीर्ण करवाया था।

पुहुपराज का अनुमान बड़ा सही निकला। जगतराज ने ज्योतिषी की सलाह के अनुसार वहाँ पर धरती को खुदवाया। उनको वहीं से बहत्तर करोड़ रजत और ९ लाख की स्वर्ण मुद्रायें प्राप्त हुई थीं। इस अपार सम्पत्ति को देख जगतराज बड़े प्रसन्न और विस्मित हुए थे। कुछ समय के लिये तो उन पर अहंकार का नशा भी छा गया था। बड़े गर्व के साथ उन्होंने अपने पिता के पास पुहुपशाह के द्वारा ही उसके पाने का समाचार पहुंचाया था। ज्योतिषाचार्य ने विस्तार के साथ छत्रसाल के सामने इस घटना को रखा था। जगतराज को लगा था कि पुत्र के कर्त्तव्य को देख पिताश्री फूले नहीं समायेंगे किन्तु वे बड़े ही शोकाकुल और गम्भीर हो गये थे।

छत्रसाल तो किसी और ही मिट्टी के बने थे। उनका सारा जीवन ही

मूल्यायिष्ठित और नैतिकता वादी था। वे एक खुली किताब थे। ''पर द्रव्येषु लोष्ठवत्'- पराया धन ठीकरे के समान है। उन्होंने अपने जीवन में उसको चरितार्थ किया स्वयं भी उसको जिये थे।

महाराज छत्रसाल ने तत्क्षण ही अपने प्रिय पुत्र को पत्र लिखा था! उसे भरे दरबार में पढ़ कर सुनाया गया था। वह सबकी आत्मा को झकझोरने वाला था। निमित्त तो पुत्र था। उनका यह पत्र इतिहास की एक अमूल्य निधि बन गई। उज्ज्वल पृष्ठ यह अप्रकाशित उनके जीवन का एक अनखुला पृष्ठ है। उन्होंने पत्र को संवत् १७७५ में बुंदेलखंडी गद्य में लिखा था। जिसका तत्कालीन दरबारी कवि हरिकेश ने विस्तार से प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जगतराज दिग्विजय' में वर्णन किया है। पत्र लिखने के एक वर्ष बाद ही संवत् १७७६ में उन्होंने इसकी रचना की थी। तभी यह जनता के सामने उजागर हुआ था।

छत्रसाल ने भरे दरबार में पुहुपशाह तथा दरबारियों को संबोधित करते हुए कहा था कि, पुत्र! मृतक की संपत्ति को उखाड़ने वाले को धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है।

धिक् धन मृतक उखारन हारे

बार-बार कहि भूप छतारें। ('जगतराज, दिग्विजय' से)

बेटों की अन्तरात्मा को झकझोरते हुए उन्होंने आगे कहा था कि ''जब मैने बादशाह से अपने पिता के बैर का बदला लिया था तब मुझको भी वहाँ अकूत संपदा मिली थी। उसको मैने छुआ भी नहीं था। उसको गरीब, दीन दरिद्रों में बंटवा दिया था। देवालय, मंदिर , कूप, बावलियाँ आदि परोपकार के कार्यों में उसको लगाया था। मैंने यह राज्य अपने बाहुबल से अर्जित किया है। दूसरों का धन हड़प कर नहीं! इसीलिये तो मैं स्वाभिमान से मस्तक ऊंचा करके चलता हूं।

''बेटे! तू क्या मृतक की संपत्ति पर अपनी जीविका चलायेगा? यह तो बड़ी लज्जा की बात है! इससे तो तेरा लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ेगा।

जो नर कोय मरा धन लेहि

''लहे नहिं श्रेय, सुलोक मझारी! ('जगतराज दिग्विजय') ''पृथ्वी में गड़ी हुई चन्देलों की संपत्ति को खोदकर तुमने अच्छा कार्य नहीं किया। उसका उपभोग स्वयं न करो! धार्मिक व सार्वजनिक हितों के कार्यों में लगा दो। पराई

सम्पदा की ओर ध्यान न दो! निज के बाहुबल में विश्वास करो!''

पराक्रमी पिता के सद्परामर्श का पुत्र पर सुपरिणाम होकर ही रहा। जगतराज ने सात करोड़ रजत और नौ लाख स्वर्ण मुद्राओं के कोष में अपने श्रम से कमाई १० हजार रजत मुद्राओं को और मिला कर परोपकार के कार्यों में उसको व्यय किया था। उन्होंने उससे बीस सहस्र कन्याओं का विवाह संपन्न कराया था।

खजुराहो, भरतगढ़, बाजीगढ़, अजयगढ़, रामगढ़, मंडीलगढ़, सतरगढ़, मंगलगढ़, सुण्डीगढ़ तथा मनिया देवी का मंदिर (महोबा) लक्ष्मण मंदिर आदि का भी जीर्णोद्धार कराया था। इसके साथ ही अनेकों जलाशयों जैसे बेलाताल रूपसागर, मदन सागर, राहिल्यह्रद, ब्रह्मह्लाद सूर्यकुंड (अयोध्या) और मणिकर्णिका घाट(काशी) का भी पुनर्निर्माण करवाया था! ग्यारहवीं शताब्दी में इनमें से अधिकांश में चन्देलों का धन लगा था। कदाचित इसीलिये जो शेष धन बचा था उसको भी उन्होंने मंगलगढ़ में गड़वा दिया था। इतिहास का यह एक अनखुला पृष्ठ महाराज छत्रसाल के राष्ट्रीय एवं वैयक्तिक चरित्र की उज्ज्वल एवं निर्मल गाथा को आज प्रकाशित कर रहा है।

— * —

संदर्भित ग्रन्थ

१. हिन्दू कुल गौरव - वीर छत्रसाल — लेखक परशुराम गोस्वामी
प्रकाशक लोकहित प्रकाशन
राजेन्द्र नगर लखनऊ

२. 'केन्द्र भारती' सांस्कृतिक हिन्दी मासिक
अप्रैल १९८२ प्रेरणा विशेषांक
'विवेकानन्द केन्द्र प्रकाशन'
कन्याकुमारी

३. वीर छत्रसाल प्रकाशक देहाती पुस्तक भंडार
चावड़ी बाजार, देहली

४. चन्देरी दर्शन माला-१ जौहर स्मारक प्रकाशक-
सुनील प्रकाश चन्देरी